सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 21

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[२१, २२, २३ भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

सम्पादक :

पं० देवचन्द जी शास्त्री, सहारनपुर

●

प्रबन्ध-सम्पादक :

बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

यादगार बकुतला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

●

मुद्रक :

पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'

साहित्य प्रेस, सहारनपुर

●

सन् १९६९]

सर्वाधिकार सुरक्षित

[न्यौछावर ३ रु.

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[एकविंश भाग]

●

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इतिवक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ।

●

सर्व पदार्थोंके स्वरूपनिर्णयकी प्रारम्भिक पद्धति—दुनियामें क्या-क्या है ? और किस प्रकारका पदार्थ है ? उसका निर्णय करना विश्रामसे रहने की इच्छा वाले पुरुषोंके लिये अति आवश्यक है, क्योंकि जिनके बीचमें हम रह रहे हैं उनका यथार्थ भान हो तो विपरीत कल्पनायें जगती हैं और उस अज्ञान अन्धकारमें उठने वाली विपरीत कल्पनाओंसे परेशान हुआ करते हैं । इस कारण यह आवश्यक है कि हम जगतके पदार्थोंका भली भाँति स्वरूप समझें, पदार्थोंका हम स्वरूप समझें । इससे पहिले हमको शुरुवात इस ढंगसे करनी होगी कि जिससे हम ऐसी विशेषताओंको बतायें, ऐसे धर्मोंको, चिन्होंको, लक्षणोंको बतायें कि जो लक्षण सबमें घटित हों और फिर उससे संकुचित हो होकर ऐसा विशेष लक्षण निरखें कि जिसमें अन्य द्रव्य छुट जायें और विवक्षित द्रव्य आये । इस प्रणालीसे सहित स्वरूपकी जानकारी करना धोखेसे बाहर होता है । जगतमें जो कुछ भी पदार्थ है, इतना तो सबसे पहिले मानना होगा कि वे सत् हैं । है के बिना किसीके बारेमें कुछ कहना बेतुकी बात है । सबसे पहिले यह मानना है कि 'है' इसे कहते हैं अस्तित्व, पर पदार्थ है है, इतना ही माना जाय तो उसका अर्थ यह हो जायगा कि है जो कुछ भी है । जिस किसी एक पदार्थ को हम जब जानना चाहेंगे और है ही मात्रसे जानेंगे जो यह अमुक है, तमुक है, सब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ है तब क्या व्यवस्था बनी ? इससे मानना होगा कि जो है वह अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है। इसमें है की बात कुछ अधूरे रूपसे पूरी हो गयी, लेकिन वह 'है' रह नही सकता जिस 'है' का कोई व्यक्त रूप न हो। आकार परिणमन अवस्था कोई व्यक्तरूप रूप न हो तो वह है चीज क्या है ? इससे यह समझना होगा कि पदार्थ का व्यक्तरूप नियमसे हुआ करता है। ऐसा कोई पदार्थ नही कि जिसकी अवस्था तो न हो और पदार्थ हो, कुछ सिद्धान्त हैं ऐसे जो व्यक्तरूप कुछ नही मानते। अवस्था, दशा, परिणति स्वीकार नही करते। उसे माया आदिक शब्दोंसे कह देते हैं और पदार्थोंको अपरिणामी स्वीकार करते हैं। लेकिन परिणाम न हो, व्यक्तरूप न हो, अवस्था न हो तो उसका 'है' जीवित नही रह सकता। इसलिए मानना होगा कि 'है' अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नही है और निरन्तर वह अपनी किसी न किसी अवस्था में रहता है अर्थात् परिणमता रहता है। परिणमता तो रहता है पर इतना ही मात्र माननेसे कि परिणमता रहता है। अब कोई किसीरूप परिणम जाय, अन्यरूप परिणम जाय तो फिर वस्तुव्यवस्था नही रह सकती। अतः मानना होगा कि अपने ही स्वरूपमें परिणमता है दूसरे स्वरूपमें नही परिणमता। इतना माननेके बाद यदि उसका कोई आकार बुद्धिमें न आये तो वस्तुके बारेमें हम कुछ भी कल्पना तक नही कर सकते। नक्शोंके द्वारा भी जब भूगोलमें अमेरिका, जापान आदिक देश बताये जाते हैं, नगर, पर्वत, नदियाँ आदि बतायी जाती हैं तो यद्यपि देखा नही है उन्होंने मगर समझने वाले विद्यार्थी उनका कुछ न कुछ आकार दिमागमें रखते हैं तब उनकी समझमें आता है। पदार्थमें आकार होता है, पदार्थ प्रदेशवान होता है। इतना सब कुछ होनेपर भी सत् ही ज्ञेय होता है, असत् ज्ञेय नही होता। ऐसा देखा जाता, जिससे सभी सत् प्रमेय होते हैं।

साधारण गुणोंकी असाधारण गुणके साथ अविनाभाविता—उपरोक्त प्रकारसे सर्व पदार्थोंमें सामान्य गुण बराबर मौजूद हैं। इतना होनेके बाद काम क्या चला ? अर्थक्रिया कुछ नही हुई। प्यास लगी है, पानी पीना है, तो इन ६ साधारण गुणोंसे क्या काम हो जायगा ? अथवा व्यापार रोजिगार आदिके कार्य करना है तो केवल ६ साधारण गुणोंसे अर्थक्रिया न बनेगी। यद्यपि इन ६ साधारण गुणोंके माने बिना असाधारण गुण कुछ महत्व न रखेगा, न काम बन सकेगा। लेकिन मात्र ६ साधारण गुणोंसे भी बात नही बनती। प्रत्येक पदार्थमें, प्रत्येक सत्में अपना—अपना कोई असाधारणपना अवश्य है। असाधारण मायने विशेष गुण। तो देखो ! पदार्थ में सामान्य गुण भी है, विशेष गुण भी है और फिर जब ये पदार्थ परिणमते हैं तो जो परिणमन है वह उसका विशेष है। तो यों समस्त पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं, इस दृष्टिसे सभी पदार्थोंमें सामान्य गुण भी है विशेष गुण भी है। सामान्य गुण न मानें तो काम न चलेगा। सामान्यविशेषात्मक सब पदार्थ हैं। अब उससे और मोटे रूपमें निरखें तो अनेक पदार्थ जिस धर्मकी दृष्टिमें समान जच रहे हैं वह तो है सामान्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण और जिन धर्मोंसे यह इससे न्यारा है, यह इससे विलक्षण है ऐसा जचे, उसे कहते हैं विशेष गुण। तो यों पदार्थं सभी सामान्यविशेषात्मक होते हैं।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थको छिन्न कर करके छिन्न करनेका प्रयास– मू । प्रकरण इस प्रसंगमें यह चल रहा है। पदार्थकी सामान्य विशेषात्मकता न मानकर विशेषवादी अपना यह सिद्धान्त रख रहे हैं कि सामान्य स्वयं एक पदार्थ है विशेष स्वयं एक पदार्थ है। फिर वहाँ रहा क्या ? वहाँ द्रव्य रहा, गुण रहा, क्रिया रही। फिर यह सामान्य विशेष अथवा कोई गुण क्रिया द्रव्यमें कैसे लग बैठेगी ? तो एक सम्बन्ध है जिसका नाम समवाय है, इस तरह ६ पदार्थोंकी व्यवस्था करते हुए वे द्रव्यको ९ प्रकारका बता रहे–जिसमे पृथ्वी जल अग्नि, वायु, आकाश काल, दिशा इन ७ पदार्थोंके सम्बन्धमें विवेचन हुआ, जो उसमें तथ्य था उसकी पुष्टि की और जो उनमें अतथ्य था उसका निराकरण किया। दिशा नामका कोई द्रव्य है ही नही। इसलिए उसका सर्वप्रकार निराकरण हुआ। उसके बाद अब आत्म द्रव्यका वर्णन आ रहा है। विशेषवादमें बताया गया है कि एक आत्मा सर्वव्यापी नित्य निरंश चैतन्यमात्र है, उसमें गुण नही क्रिया नही, सामान्य नही, विशेष नही। ये तो उसमें समवाय सम्बन्धसे थोपे जाते हैं। चैतन्य मात्र भी यों कहना पड़ता कि कदाचित् ऐसा प्रश्न हो उठे कि जब आत्मा बिल्कुल निराला है गुण कर्म सामान्य विशेष ये बिल्कुल निराले हैं तो ज्ञानगुण, सुखगुण ये आत्मामें ही क्यों चिपकते हैं अन्य पदार्थोंमें क्यों नही चिपक जाते ? निरालेकी तो यही स्थिति होती है। तो उसका कुछ थोड़ा बहुत उत्तर बनानेके लिए चिन्मात्र मानना पड़ा है। आत्माके चित्स्वरूप होनेसे यह ज्ञान स्वरूप आत्मामें ही चिपकेगा अन्यथा इसके भी माननेकी जरूरत नही है।

स्याद्वादका लोकप्रसिद्ध प्रतीक- स्याद्वाद भेदवादके आधारपर हैं। जैसे कि लोकमें एक गणेशमूर्ति बनती है। चूहेकी तो सवारी और हाथीका मस्तक शरीरमें अभेद रूपसे फिट है। ये दो विशेषतायें गणेशमूर्तिमें मानी जाती हैं। तो कल्पना करो कि क्या कोई ऐसा महापुरुष हुआ है जो चूहेपर तो बैठता था और हाथी जैसा मुह था, कल्पनामें यह बात समाती नही है। कोई साधारण जन भी यह नही करते हैं कि चूहेकी सवारी किया करें और न किसीका अब तक ऐसा मस्तक हुआ है कि हाथी जैसा मस्तक लगे और फिर सूढ़से ही लड्डू उठाकर मुहमें देकर खाया करें। तब तथ्य की बात क्या थी? यह है एक स्याद्वादका प्रतीक। स्याद्वाद कहते हैं अपेक्षा लगाकर वस्तुका निर्णय करना जैसे पूछा जाय कि बतलावो आत्मा नित्य है या अनित्य है? तो आत्मा चूँकि अनादिसे है अनन्त काल तक है, कभी मिटेगा नही, आत्मा ही क्या कोई भी पदार्थ अनादिसे है अनन्तकाल तक है, कभी मिटेगा नही, इस दृष्टिसे आत्मा और आत्मा ही क्या सभी पदार्थ नित्य हैं, लेकिन आत्मामें भी सभी पदार्थोंमें भी प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है। अवस्था उसकी कुछ न कुछ व्यक्त रहेगी ही। तो जब यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणमन चलता है कभी कम ज्ञानी कभी ज्यादा ज्ञानी कभी सुखी कभी दुःखी तब इससे आत्मा अनित्य निर्णीत है। कभी सुखी आत्मा था वह न रहा अब दुःखी हो गया। आत्मा वही है, यों अपेक्षासे अनेक धर्मोंका निर्णय होना यह स्याद्वाद पद्धतिका काम है तो इस गणेश प्रतीकने हमको यह बताता कि देखो जगतके सभी पदार्थ भेदा-भेदात्मक होते है। जो भी ध्यानमें आये, समझमें आयें वे परस्पर भिन्न-भिन्न है, और भिन्न-भिन्न जचकर भी किसी निगाहसे वे सब एक है और विश्वके पदार्थ सब एक भी हैं और नाना भी है। विवक्षित एक पदार्थ एक भी है और उसमें नाना धर्म भी हैं। यह बात यह गणेश मूर्ति बताती है। किस तरह ? देखो चूहेका जो इतना लगाव रखा जा रहा है यह तो भेदक प्रतीक है। जैसे चूहेकी यह प्रकृति है कि वह कागज अथवा कपड़ेके टुकड़े कुतर कुतर कर इस तरहके छोटे कर देता है कि जैसे टुकड़े कैंची अथवा अन्य किसी औजारसे नही किये जा सकते, यह प्रकृति चूहेमें है और यह हाथीका शिर जो कलेवरपर फिट है यह बतलाता है कि देखो ! यहाँ कोई भेद नजर नही आता। इसी प्रकार ये सब पदार्थ अभेदरूप है। इससे क्या निकला ? जैसे मानलो एक आत्मा ही है। इस आत्मामें हम विश्लेषण जब करें तो देखो आत्मामें ज्ञान गुण है, दर्शन गुण है, सुख गुण भी है। इसमें पुण्यभाव भी है, पाप भाव भी है। इसमें अनेक धर्म नजर आये। तो कौन अलगमें ज्ञेय बना ? स्वरूपकी दृष्टि बनी। इससे तो ये भिन्न-भिन्न हैं लेकिन ज्ञान कभी आत्मासे अलग रहा हो या कभी यह अलग रह सकेगा ऐसी स्थिति तो नहीं बन सकती। तो ज्ञान स्वरूप है इसलिए अभेद है, इन दो बातोंमेंसे चूहेकी प्रकृतिका एकान्त करने वाले विशेषवादी यह कह रहे हैं कि आत्मा तो आत्मा ही है। उसमें ज्ञान गुण नही, सुख दुःख नही धर्म अधर्म नही, सामान्य नही, विशेष नही। और वह है एक नित्य सर्व यापक। ऐसे आत्मद्रव्यके सिद्ध करने वाले वैशेषिक सिद्धान्तवादियोंसे कहा जा रहा है कि एक अपरिणामी सर्वगत आत्म द्रव्य भी प्रमाण सिद्ध नही है।

आत्मद्रव्यकी मीमांसाका प्रकरण – यह प्रकरण चल रहा है आत्मद्रव्यकी सिद्धिका, जिसके सम्बन्धमें हम तंतकी बात जानना चाहते हैं और अनादिसे हम गैर ततोंमें लग रहे हैं तो तंतकी बात परखनेके लिए हमें उसका बहुत विस्तारसे वर्णन चाहिए। इसी कारण इस विस्तारको सुनकर अपनी बुद्धिमें थकान न लाना चाहिए। कारण यह है कि जिन-जिन अतथ्योंमें हम आज तक बस रहे हैं, कुछ बुद्धि पाई तो उसका भी उपयोग अतथ्योंमें लगाया है. उन सब अतथ्योंमें यह ज्ञान करना होगा कि यह बात सत्य नहीं है। जब यह परिज्ञान होता तो जो रहस्यकी बात है उसपर कोई दृढ़तासे टिकाव होगा। इस समय आत्माके सम्बन्धमें माने गए अनेक कल्पित धर्मोंमेंसे यह आत्मा सर्वगत है, इस विषयपर विचार चल रहा है। विशेषवादी आत्माको एक और सर्वव्यापक कह रहे हैं जितना आकाश है, उस सारे आकाशमें व्यापक है। कुछ थोड़ा बहुत पढ़े-लिखे लोग आत्माके विषयमें ऐसी कल्पना करते हैं पर जनसाधारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसी कल्पना नही करते कि आत्मा एक है और सर्वव्यापक है। धर्मके आवेशमें आकर जनसाधारण लोग कम पढ़े-लिखे लोगोंकी बात सुनकर कहें यह बात अलग है, पर प्रतीति इसको स्वीकार नही करती कि एक मैं आत्मा सर्वव्यापक हूँ, क्योंकि प्रत्यक्ष होनेसे विरोध आ रहा है। देखो! प्रत्यक्षसे यह आत्मा इस तरहसे जाना जाता है— मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूं, मैं अमुकको जानता हूं आदिक सबको अपने आपके अन्दर पृथक रूपसे अहं अहं प्रत्ययके द्वारा स्वयं ज्ञात हो रहा है। इससे सिद्ध है कि आत्मा व्यापक नही है, किन्तु अपने ही देहमें सुख आदिक स्वभावसे उपस्थित है, ऐसी प्रतीति होती है। मैं आत्मा जरा बाह्य विकल्प छोड़कर अपने आपकी ओर जाकर इस आत्म तत्वकी दृष्टि करूँ। अपने आपके बारेमें कुछ समझना चाहूं तो एक अस्त: आल्हादको लेकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह हूँ मैं और वह अनुभव देह प्रमाण निजक्षेत्रमें होता है। तो यह बात सब लोगोंको अपने अपने सम्वेदनसे और प्रत्यक्षसे सिद्ध है किसीको भी ऐसा प्रतीत नही होता कि यह मैं आत्मा अन्य देहमें हूं। जब कि आत्मा व्यापक है और मैं भी उसका अंश हू तो एक अखण्ड व्यापक आत्माके बाहेमें यदि मैं अंश ज्ञान करूँ तो ऐसा हो सकेगा क्या कि उस आत्माके इतने अंशको तो मैं जान रहा हूं और बाकी अंशोंको मैं नही जान रहा? क्योंकि वह अखण्ड है। जानकारी होगी तो समस्त वस्तुमें होगी।

एक वस्तुकी अखण्डता व व्यापिताके परिचयका उपाय—एक वस्तु उतनी कहलाती है कि एक परिणमन जितना पूरेमें होना ही पड़े और जिससे बाहर कभी न हो। जैसे यह एक बेन्च है, इसके यदि एक कोनेमें आग लग जाय तो सारी बेन्चको एक साथ एक ही समयमें जल जाना चाहिए, पर ऐसा तो नही होता इससे सिद्ध है कि बेन्च एक चीज नही है। इस शरीरकी बात देखो! यदि शरीरके किसी अंगमें फोड़ा हो गया तो सारा शरीर तो नही सड़ जाता। इससे मालूम होता है कि यह शरीर एक नही है। तब फिर क्या है? बेन्चोंमें जो अविभागी परमाणु हैं वे केवल एक चीज है, और ऐसे ऐसे अनन्त अविभागी परमाणुवोंका यह पुञ्ज हो गया है और बेन्चकी सकलमें है। एक जो होगा उसका परिणमन उस एकमें पूरेमें एक ही समयमें होगा। उस एक परमाणुमें जो बात बनेगी, रूप, रस, गंध, स्पर्श जो भी परिणमन बनेगा वह पूरेमें बनेगा। तो इस तरह जैसे कि अभी हम देह प्रमाण आत्मा हैं तो ज्ञान बनता है, तो ऐसा नही है कि नीचे पैरसे लेकर और नाभि तककी आधी आत्मामें तो ज्ञान परिणमन न होता हो और नाभिसे लेकर शिरतकके आधे आत्मामें ज्ञान परिणमन होता हो। अथवा आधी आत्मामें सुख परिणमन हो रहा हो और आधी आत्मामें दुख परिणमन न हो रहा हो, ऐसा नही है। यह मैं आत्मा देह प्रमाण हूँ। मेरा सुख होगा तो पूरेमें और दुःख होगा तो पूरेमें। वहाँ यह सम्भव नहीं है कि आधे आत्मामें सुख परिणमन हो और आधेमें ज्ञान परिणमन हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक आत्माके ज्ञानपरिणमनका उस आत्मामें पूरेमें सद्भाव— यहाँ एक प्रश्न किया जा सकता है कि लगता तो है ऐसा कि शिर दिमागकी जगहके आत्मामें ज्ञान हो रहा है और पूरेमें रहने वाले आत्मामें ज्ञान नहीं हो रहा है। तो ऐसा लगने का एक कारण निमत्तत्त्व है, वस्तुतः यह बात नही है इस परिस्थितिमें जब कि हम परतंत्र हैं, कर्मबन्धनमें हैं, शरीरमें बँधे फँसे हैं, रागादिक विकारोंमें चल रहे हैं। ऐसी स्थितिमें यह आत्मा ऐसा परतंत्र है कि यह ज्ञान करेगा तो इन्द्रिय आदिक निमित्तसे ज्ञान करेगा। जैसे कि हम जब आँखें खोलकर देखते हैं तो हमें पदार्थोंका ज्ञान होता है और देखते समय लगता भी ऐसा है कि ये सब ज्ञान हम आँखोंसे कर रहे हैं, आंखों में कर रहे हैं; सब कुछ इनका सार आँखमें है, लेकिन आँखें तो पदार्थके जाननेके मात्र बाह्य साधन हैं। विवेक विचारसे आप परखेंगे तो यह ज्ञात होगा कि यह तो एक जाननेका साधन मात्र है। जानने वाला तो यह आत्मा है। पर साधन होनेके कारण हमारी जानकारीका सारा निचोड़ आँख तक हो प्रतीत हो रहा है, इसी प्रकार मानसिक ज्ञान मनके निमित्तसे होते हैं और मन अनवस्थित है। इस मनका विस्तार कहाँ तक है जहाँ तक कि उसका प्रभाव है। मन कहो अथवा दिमाग कहो, एक ही बात है। उसके निमित्तसे हमको ज्ञान हुआ करता है। तो ऐसा लगता है कि साधनसे उद्भव होनेके कारण कि हमको ज्ञान यहाँ हो रहा है, पूरे आत्मामें नही हो रहा। आत्मा एक है, अखण्ड है और उस समस्त आत्मामें ज्ञान हो रहा है।

एक आत्माके सुखादि परिणमनका उस आत्मामें पूरेमें सद्भाव— सुख अथवा दुःखके बारेमें भी यह शंका की जा सकती है। देहमें किसी जगह दुःख हुआ, दर्द हुआ तो लोग कहते कि देखो इस जगह जो आत्मा है उसमें दर्द है, सारे आत्मामें दर्द का अथवा दुःखका परिणमन नही है, ऐसा लग रहा है। तो ऐसा लगनेका कारण यह है कि उस दुःख अथवा दर्दकी वेदनाकी उत्पत्तिका साधन वह फोड़ा है। फोड़ा है शरीरके किसी एक जगह। तो जो साधन है वहाँ ही दृष्टि जाती है, अतएव ऐसा मालूम होता है कि यहाँ हमको दुःख है। वस्तुतः आत्मामें दुःख परिणमन होगा तो समस्त आत्मामें होगा, सुख परिणमन होगा तो पूरेमें और ज्ञान परिणमन होगा तो पूरेमें।

आत्माको सर्वगत माननेपर देहान्तरमें व अन्तरालमें सुखाद्यनुभवनका प्रसंग— अब यदि परिणामी सर्वव्यापक मान लिया जाय तो परसम्बन्धित जो देह है जिस देहमें दूसरा आत्मा रह रहा है स्वयंके जान लेनेसे उस आत्मासे इतना बोध तो नही होता कि यह मैं हूं अथवा मैंने जो जाना सो ये अन्यदेहस्थ जाना जावे मैंने जो सुख दुःख पाया सो ये भोग लूं ऐसा नही होता है। जैसे देहान्तरमें स्वयंके आत्माकी प्रतीति नही होती है इसी प्रकार एक देहके अपने देहमें अन्य देहके बीच जो खाली जगह पडी हुई है, अन्तराल उसमें आत्मारूपसे चिन्तन नही होता है। ऐसे भिन्न-भिन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देहोंमें आत्माकी जुदा जुदा प्रतीति हो रही है। यदि ऐसा न हो याने सबका आत्मा अपने अपने देह प्रमाण न हो तब सब लोगोंको सब ही जगहमें आत्मारूपसे प्रतीति हो जानी चाहिए क्योंकि आत्मा एक सर्वव्यापक मान लिया गया है एकका लक्षण ही यह है कि जो भी परिणमन हो वह पूरेमें हो। ज्ञान हो तो मुझे सबके आत्मा सम्बन्धी ज्ञान हो जाने चाहिएँ, सबको हो जाना चाहिए, सबके ज्ञानका मुझे ज्ञान हो जाना चाहिए, एक बात, फिर दूसरे सबने खाया तो हमें भी तृप्त हो जाना चाहिए। जैसे लोग कहते भी हैं कि आइये साहब भोजन कीजिए तो वह आगंतुक पुरुष कह देता है कि ठीक है आपने खाया तो हमने खाया। तो यह बात अब संगत बन जाना चाहिए। तो भोजन आदिकका जो व्यवहार चल रहा है भिन्न-भिन्न रूपोंसे तृप्तिका, सुख, दुःखका, इन सबमें संकरता आ जायगी, सब कुछ एक रूप बन जायगा। तो आत्मा सर्वगत नही है, आत्मा देह प्रमाण है यह बात अपने अपने अनुभवसे सिद्ध है। ऐसा जानकर हम अपने आपके ही अपने आपके रहस्योंको खोजें, समझें। यद्यपि अपने अन्तः स्वरूपकी समझ बनानेसे हम देह प्रमाण हैं यह भी ख्याल भूल जायगा। केवल एक गुण दृष्टि ही रहेगी। स्वरूप दृष्टि ही रहेगी। सो ऐसी स्वरूप दृष्टि पालेना हमारे सर्वज्ञानोंका प्रयोजन है, तो ऐसा अपने आपमें तत्वको जाननेके लिए अर्थात् अमूर्त प्रतिभास मात्र निर्विकल्प यह मैं हूं ऐसी प्रतीति बनानेके लिए आत्मतत्वकी जानकारी अति आवश्यक है। उस ही आत्मतत्वके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न सिद्धान्त वाले क्या क्या अपने विचार बनाते हैं और किस तरहसे उनकी समस्यायें सही अथवा गलत बैठती हैं, इन सबका विचार यहाँ चल रहा है। इस प्रसंगमें एक यह बात भी विचारणीयरख लीजिये कि आत्मा सर्वव्यापक है, यह भी किसी दृष्टिसे सही है, इसको अन्तमें बतावेंगे। अभी तो प्रदेशापेक्षासे, वस्तु अपेक्षासे आत्माकी बात कही जा रही है कि आत्मा सर्वव्यापक नही किन्तु वर्तमानमें देह प्रमाण है।

आत्माका अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्व सिद्ध करने वाला प्रथम अनुमान – विशेषवादी आत्माको सर्वव्यापक मानते हैं। आत्मा एक है और वह सर्वव्यापक है। सर्वगतत्व धर्मका प्रयोग अनुमान विरोधसे भी सिद्ध होता है, जैसे कि अनुमान है कि आत्मा परम महापरिमाणका अधिकरण नही होता, अर्थात् जिसमें उत्कृष्ट महान परिमाणसे इस तरहका आत्मा नही है. क्योंकि अन्य द्रव्योंमें न पाये जाने वाले सामान्यसे युक्त होकर अनेक पाये जाते हैं आत्मा, जैसे कि घट पट आदिक घटका सामान्य पटमें नही है, और फिर अनेक हैं इस कारण घटका परिमाण परम महान नही हो सकता, इसी तरह आत्माका सामान्य अन्यमें नही पाया जाता। आत्मा में जो सदृश धर्म है चैतन्य, चैतन्य ज्ञान दर्शन, यह सामान्य अन्य द्रव्योंमें नही है, विशेषवाद सम्मत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन इन ८ द्रव्योंमें आत्मामें पाया जाने वाला सामान्य गुण नही है तो अन्य द्रव्योंमें न पाने वाला सामान्य गुण नही है। तो अन्य द्रव्योंमें न पाया जाय ऐसा सामान्य है आत्मामें और तिस

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर यह अनेक है, अतः आत्मा परममहापरिमाण वाला नही है। इसका सीधा निष्कर्ष यह है कि आत्मा अनेक हैं. क्योंकि सबका अपने आपमें अनुभव चल रहा है।

स्वभावदृष्टिसे आत्माके एकत्व व व्यापकत्वका दिग्दर्शन – आत्मा किसी दृष्टिसे एक व व्यापक भी सिद्ध हो जाता है किन्तु वह है भावदृष्टि। आत्माको किस स्वरूपसे एक माना है, व्यापक माना है? वह स्वरूप है आत्मामें पाया जाने वाला चैतन्यस्वरूप, जो एक है क्योंकि एकका अर्थ संख्या नही, किन्तु समान है, एक शब्द समान अर्थमें भी बोला जाता है और संख्यामें भी बोला जाता है जैसे–दो कपड़े एकसे हैं तो कहते हैं कि ये दोनों एक ही चीज हैं। अरे दो एक कैसे हो गए? दो तो दो ही हैं लेकिन समान हैं वे। उनकी डीजाइन, मजबूती, भाव आदिक सब एक बराबर हैं अतएव कहते हैं कि ये दोनों एक ही कपड़े हैं। इसी प्रकार जितने आत्मा हैं हम आप सब इन सबका स्वरूप पूर्णतया एक है। रंच भी फर्क हो इतनी भी गुंजायस नही है। यद्यपि इन सब आत्माओंमें अनेक जीव भव्य हैं अनेक जीव अभव्य हैं, अर्थात् जो मुक्तिके पात्र हैं वे भव्य हैं और जो मुक्तिके पात्र नही वे अभव्य हैं, इतना अन्तर होनेपर भी स्वरूपकी दृष्टिसे देखो तो उन दोनों जीवोंके स्वरूपमें रंच मात्र भी अन्तर नही है याने वे एक समान हैं। अब ऐसा जो वह चैतन्य स्वरूप है जो कि एक है वह एक व्यापक है। ऐसा चैतन्यस्वरूप जिस उपासककी दृष्टिमें रहता है उस उपासकको दृष्टिमें क्या उस स्वरूपकी सीमा भी रहती है कि यह चैतन्यस्वरूप और इतना बड़ा? चैतन्य आत्मामें तो सीमा होती है पर आत्माके स्वरूपमें सीमा नही होती। जैसे जल का स्वभाव ठंडा लोक रूढ़िमें कहते हैं तो जलकी तो सीमा है आधा सेर जल, सेर भर जल, लेकिन जलके स्वभावकी सीमा नही है। जलका स्वभाव ठंडा है ! तो ठंडे की क्या सीमा आकाररूपमें, इसी प्रकार आत्माकी तो सीमा है, आत्मा व्यापक नही है, पर आत्माके स्वभावकी सीमा नही है जिस उपासककी दृष्टिमें आत्म स्वभाव आया हुआ है उसे यह ख्याल नही कि यह स्वभाव यहाँ तक है इससे आगे नही है, उसका तो स्वभावमय उपयोग चल रह है। तो स्वभावमें सीमा नही है इस दृष्टिसे व्यापक है। और समस्त आत्माओंका स्वरूप पूर्णतया समान है इस दृष्टिसे एक है। अब कोई पुरुष इस रहस्यको जल्दी जाननेके लिए उस स्वभावका तो नाम रखे आत्मा और इस चैतन्य पदार्थका नाम रखे जीव तो यह उसके समझनेका एक चुनाव है, पर वाच्यको तत्त्वको जाननेका प्रयोजन है। शब्द चाहे कुछ भी कहें यदि स्वभावका नाम आत्मा रखकर कहें कि आत्मा एक और व्यापक है ठीक है, मान लिया जायगा, और जो जीव है वे अनेक हैं और अव्यापी हैं, लेकिन इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि जो चैतन्य पदार्थ है वह पदार्थ तो अनेक है और आवान्तर प्रमाण वाला है अर्थात् न परिमाणुकी तरह एक प्रदेशी है और न आकाशकी तरह सर्वगत है, किन्तु आवान्तर परिमाण वाला है। हां उसमें जो स्वभाव है चैतन्य, वह एक है और व्यापक है। लेकिन यह व्यापकपना क्षेत्रकी अपेक्षासे नही है। स्वभावका परिज्ञान क्षेत्र दृष्टिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता ही नहीं है, तब फिर स्वभावको व्यापक समझनेके लिए क्षेत्र जैसी दृष्टि दौड़ाये तो यह बेतुकी बात होगी। स्वभाव भाव दृष्टिसे ही जाना जाता है। तब चेतनका जो भाव है, जो स्वरूप है उस ही स्वरूपपर उपयोग रखा जाय, एक प्रतिभास स्वरूप तो इस प्रतिभास स्वरूपपर दृष्टि होनेपर द्रष्टाके उपयोगमें स्वभाव ही बसा हुआ है अथवा उसका उपयोगमें उस कालमें स्वभावमय है, वहाँ सीमा नहीं है। इस रहस्यको न मानकर सीधा ही चैतन्य पदार्थको एक ओर सर्वव्यापक माना जाय तो उसमें ये आपत्तियाँ बतायी जा रही हैं।

आत्माका अणुपरम महापरिमाणानधिकरणत्व सिद्ध करने वाले प्रथम अनुमानके हेतु विशेषणोंकी सार्थकता – आत्मा अनेक हैं, चेतन पदार्थ अनेक हैं, चेतने वाले समझने वाले, यों उन्हें जीव शब्दसे कह लीजिए तो वे सब अनेक हैं, क्योंकि इनमें जो सामान्य पाया जाता वह अन्य द्रव्योंमें नहीं है और ये जीव अनेक हैं, ये जीव इस कारणसे सर्वगत नहीं है। तब सिद्ध यह किया जा रहा है कि आत्मा परम महापरिमाण वाला नहीं है। परम मायने उत्कृष्ट, महान मायने विशाल, उत्कृष्ट विशाल परिमाण वाला नहीं है आत्मा किन्तु आवान्तर परिमाण वाला है, क्योंकि द्रव्यान्तरमें न पाये जाने वाले सामान्यसे युक्त होकर अनेक होनेसे। यहां हेतु विशेषण सहित है, हेतु तो मुख्य है 'अनेक होनेसे'। जो अनेक होता है वह सर्वगत नहीं होता, लेकिन इतना ही मात्र हेतु कहते कि अनेक होनेसे आत्मा सर्वगत नहीं है। तो अनेक तो सामान्य भी है। जैसे—मनुष्यमें क्या पाया जाता है? मनुष्यत्व। और घटमें घटत्व। इसी प्रकार जितने भी पदार्थोंके नाम लोगे उनमें उतने ही सामान्य बताते जावो! तो सामान्य अनेक हो गए ना, सदृश धर्मको सामान्य कहते हैं। सामान्य अनेक होनेपर भी सामान्य व्यापक है ना, जितने उस जातिके पदार्थ हैं उन सब पदार्थों में व्यापक है सामान्य। यहाँ तो यह कहा जा रहा कि जीव व्यापक नहीं है, क्योंकि अनेक होनेसे। तो अनेक होनेसे इतना ही मात्र कहनेपर सामान्यके साथ विरोध आता है सामान्य है तो व्यापक मनुष्यत्व। क्या एक मनुष्यमें ही नियमित रह गया मनुष्यत्व यहाँके मनुष्य जैसे मनुष्य जहाँ भी बसते हों वे सब मनुष्य उन सबमें मनुष्यत्व पाया जाता है तो सामान्यके साथ अनेकान्त दोष नहीं हो, इसके अर्थ याने अनेकान्त दोषके परिहारके लिए इसमें विशेषण दिया है। जो सामान्य वाला होकर अनेक हो वह नहीं है सर्वव्यापक। सामान्य वाला नहीं है, सामान्य। सामान्य खुद सामान्य है। जैसे मनुष्यमें क्या सामान्य है? मनुष्यत्व तो मनुष्यत्वमें क्या सामान्य है? क्या कोई कहेगा यों मनुष्यत्व त्व? कोई लोग भूलसे यों बोल जाते हैं, मनुष्यत्वपना, अरे पना और त्व इन दोनोंका एक अर्थ है। सामान्यमें सामान्य नहीं हुआ करता। इस कारण डबल त्वका प्रयोग गलत है। सामान्य हो जाय तो वह सामान्य नहीं रह सकता, वह विशेष हो जायगा, तो यहाँ हेतुके साथ एक विशेषण यह दिया गया है कि सामान्य वाला होकर अनेक है। यदि सामान्य वाला, इतना कहें तो आकाशके साथ व्यभिचार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आता है। देखो ! आकाश तो सामान्य वाला है ना, आकाश द्रव्य है और जो द्रव्य होता है वह सामान्य विशेषात्मक हुआ करता है। आकाश अमूर्तिक पदार्थ है इस कारण हम उसमें सामान्य विशेषका स्पष्ट विश्लेषण नही कर सकते। लेकिन द्रव्यके नाते उसमें समान्य धर्म है और विशेष धर्म है, थोड़ा समझ भी लें—सामान्य धर्म तो उसमें अनेक हैं अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व ये सर्व पदार्थोंमें ६ साधारण गुण पाये ही जाते हैं, सो सामान्य आकाशमें है ही और विशेष भी है, देखो, आकाश सबके सब द्रव्योंके अवगाहका कारण बन रहा है। आकाशमें समस्त द्रव्य समा जाते तो आकाश विशेष वाला भी है और सामान्य वाला भी हुआ ना। सामान्य वाला होकर भी आकाशमें सर्वगतत्वका अभाव नही है, इस कारण इस हेतुके साथ एक विशेषण और दिया गया है द्रव्यान्तरमें न पाये जानेवाले सामान्यसे युक्त होकर। जब हेतु इतना ही माना जाय "सामान्य वाला होकर" इससे आत्मा सर्वव्यापक नही है तो इसमें व्यभिचार दोष आता है आकाशके साथ। तो उसमें एक विशेषण और लगाया कि द्रव्यान्तरमें न पाया जाने वाला सामान्य वाला होना। अर्थात् विवक्षित द्रव्य है आत्मा उससे भिन्न द्रव्य है आकाश उस आकाशमें न पाया जाय ऐसा सामान्य वाला हो तो वहाँ यह हेतु लगेगा, पर आत्मामें जैसा सत्त्व द्रव्यत्व है वैसा आकाश में भी सामान्य है। अतः असाधारणत्व विशेषण वाला हेतु आकाशमें नही रहा अनेक पना नही है इससे दोष निवृत्ति हो जायगी। प्रयोजन यह है कि आत्मा सर्वगत नही है अर्थात् एक ही आत्मा हो और सारे आकाशमें फैला हुआ हो ऐसा नहीं है।

आत्माका अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्व सिद्ध करने वाला द्वितीय अनुमान—इस प्रकरणमें जिन भाइयोंने यह सुन रखा है या निश्चय कर रखा है कि आत्मा सर्वगत है और एक है, उन्हें यह स्मरण कर लेना चाहिए कि इस प्रसंग में कि आत्माका स्वभाव एक है और वह व्यापक है। आत्मद्रव्य जिसमें कि परिणमन होता है, गुण हुआ करता है अर्थक्रिया हुआ करती है वह आत्मा नामक पदार्थ एक और सर्वगत नही है। अब आत्माको असर्वगत सिद्ध करनेके लिए दूसरा हेतु देते हैं कि आत्मा सर्वगत नही है, परम महान परिमाणका आधार नही है, क्योंकि दिशा, काल, आकाशसे भिन्न होकर द्रव्य होनेसे। यह समझाना हो रहा है वैशेषिकोंके लिये जिनके आशयमें ९ प्रकारके द्रव्य माने गये हैं, जिनमें दिशा आकाश काल और आत्मा इन चार द्रव्योंको तो माना है सर्वव्यापक। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन इन ५ द्रव्योंको माना है अव्यापक। उनके प्रति यह सब कहा जा रहा है। अतएव हेतुमें दिशा शब्द भी कहा, काल शब्द भी कहा। यद्यपि दिशा नामका कोई द्रव्य नही है और काल नामका द्रव्य तो है, किन्तु वह अणुमाण है, एक प्रदेशी है। हाँ, आकाश नामक द्रव्य सब एक है और सर्वव्यापक है, किन्तु वैशेषिकोंको समझानेके प्रसंगमें हेतु दिया जानेसे दिशा आकाश, काल इनसे भिन्न होकर द्रव्य है यह आत्मा इस कारण यह सर्वगत नही है यों कहना पड़ा। आत्मा सर्वगत नही है क्योंकि द्रव्य होनेसे।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इतना मात्र कहनेसे आकाशमें दोष पहुंचता है। द्रव्य तो आकाश भी है पर वह सर्वव्यापक है और वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार दिशा और कालमें भी दोष पहुंचता है। देखो! दिशा भी द्रव्य है पर वह अव्यापी तो नही, इससे यह कहा कि जो न दिशा है, न आकाश है न काल है फिर भी द्रव्य है, अतएव आत्मा सर्वगत नही है। व्यापक सामान्य भी होता है लेकिन सामान्य द्रव्य नही कहलाता, किन्तु सामान्य धर्म है इस कारण सामान्यके साथ दोष न आयगा। दिशा, आकाश, कालके साथ भी दोष नही है, क्योंकि उससे अन्य है यह हेतुका विशेषण दिया गयाहै। तब पूर्व हेतु हुआ यह कि दिक्कालाकाशसे अन्य होकर द्रव्य है आत्मा, इस कारण आत्मा सर्वगत नहीं।

अनुभूतिसे आत्माकी अनेकताकी सिद्धि—आत्मा आवान्तर परिणाम वाला है। हम अपने अपने आपको देखें तो देह प्रमाण आकारमें देखें! स्वभावदृष्टिसे देखें तो देहप्रमाणका भी बन्धन तोड़ दें, विकल्प आकारका विचार ही नही, किन्तु एक भावमात्रको निरखें। आत्माको दो दृष्टियोंसे तका जा रहा है, एक तो आकारकी दृष्टिसे और एक स्वभावकी दृष्टिसे, जितना परिमाण आकाशका है उस समस्त आकाश में फैला हुआ है ऐसी सर्वगतपनेकी सिद्धि आकारसे की जा सकती है। लेकिन आकार की अपेक्षासे आत्मा सर्वगत नही है। एक आत्मा यदि सर्व देहियोंमें ही रहने वाला है तो जैसे कि पहिले कहा गया कि एक कुछ विचार करे तो वह विचार सबके बने, दूसरा कोई भी एक विचार बनाये तो वह विचार सबके बने। एक बाँस होता है, उसका एक कोना हिलाया जाय तो केवल एक ही कोना हिले, बांस न हिले, ऐसा कभी देखा है क्या? वह तो सारा ही बाँस हिलता है। एक कहते ही उसे हैं जिसमें जो एक परिणमन हो वह पूरेमें हो। तो मैं जो विचार करूँ वह सबका न बने, कोई विचार करे वह मेरा न बने। यह प्रतीतिमें सबके है। इससे आत्मा अनेक हैं सबके अनुभव जुदे-जुदे हैं। और फिर आत्मा एक होनेपर व्यवहारका भी विभाग न रहेगा भोजन किया एक ने तो इसके मायने है कि सबने कर लिया, तब फिर कई लोग ऐसे हैं कि जो बहुत खाया करते हैं, तब किसी भी आत्माको दुःख न रहना चाहिए तो इन सब अनुभवोंसे यह जाना जाता है कि आत्मा पदार्थ तो आवान्तर परिमाण वाला है अणुपरिमाण वाला भी नही है, परमाणुका परिमाण है, एक प्रदेश। सूईकी नोक यदि कागजपर गाड़ दी जाय तो उसपर जितना गड्ढा हुआ है, उतनेमें अनगिनते प्रदेश हैं अर्थात् जगहका अविभागी अंश। जैसे एक हाथ परिमाण डंडा है तो उसके विभाग हो सकेंगे ना! दो विलस्तका होगया फिर एक विलस्तके १२ अंगुल हो गए। एक अंगुलमें ४—५ सूत हो गए, एक सूतमें भी अनेक विभाग हो जाते हैं। यों विभाग करते-करते अविभागी अंश तो न बनेगा, किन्तु विभाग होते-होते जो आखिरी अविभागी अंश हो उसे कहते हैं एक प्रदेशी। तो उस एक प्रदेशमात्र है परमाणु और परमाणुमात्र आत्माको मानने वाले भी कुछ लोग हैं। जो अणुपरिमाण आत्माको मानते हैं उनसे कोई यह प्रश्न करे कि हमको तो आत्मा बहुत विशाल मालूम होता है, देह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाण लग रहा है। जब हम सुखी होते हैं तो इतने परिमाणमें सर्वत्र आनन्द छा जाता है। और, आत्मामें जो आनन्दके सम्पर्कसे देहके सारे रोम खड़े हो जाते हैं, आत्मा अणुप्रमाण कैसे है ? तो उनका उत्तर यह है कि आत्मा इतनी तीव्र गतिसे निरन्तर चक्कर लगाता रहता है देहमें कि लोग यह भ्रम कर बैठते हैं कि आत्मा इतना बड़ा है, यह भी एक सिद्धान्त है। इसकी भी चर्चा आयगी। प्रकरणमें यह कहा जा रहा है कि आत्मा न तो परमाणु परिमाण एक प्रदेशी है और न आकाशके समान सर्वगत है किन्तु आवान्तर परिमाण वाला है।

सदेह परम आत्माकी एक समयके लिये लोकपूरणकी स्थिति —आत्मा आकाश बराबर व्यापक तो कभी भी नहीं हो सकता, केवल लोकाकाश बराबर आत्मा एक समयके लिए किसीका एक ही बार हो सकता है। जो साधु ऋषी संत स्वभाव दृष्टिसे आत्माका परिचय पाकर स्वभावमें ही रत हो गए वहाँ स्वभावलीनताविशेषके कारण आत्मामें भव-भवके बँधे हुए कर्म स्वयं झड़ जाते हैं। देखिये ! इसमें रंच भी सन्देह नहीं है। आत्मा जब अपने स्वभावको दृष्टिमें लेता है और स्वभावमें उपयोग रम जाता है तो वह निमित्त नैमित्तिक विधि ही ऐसी है कि वहाँ कर्म सब गड़बड़ा जाते हैं, शिथिल हो जाते हैं और झड़ने लगते हैं और उनमें विचित्र परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तनको कोई अन्य विधिसे कर नहीं सकता। अष्ट कर्मोंका ध्वस तेज अग्नि जलाकर, उसमें दशांग धूप डालकर कोई करना चाहे तो यह न होगा। कोई अपने अष्ट कर्मोंपर दोष करके जैसे कि कहते हैं कि पुण्य पापने बेड़ी डाल दी है, हमको हैरान कर दिया है, उन कर्मोंपर रोष करके और यह जानकर कि यहाँ बड़ा बन्धन है स्त्री, पुत्र, वैभव आदिकके रागसे तो उन कर्मोंसे छूटनेके लिए इन स्त्री पुत्रादिकको छोड़कर कहीं भग जाये, तो ऐसा करनेपर भी वे कर्म न खिरेंगे। यह काम तो उसने रागवश और द्वेषवश किया है। कर्मोंके खिरनेका उपाय स्वरूप दर्शन, स्वरूपरमणके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। जो ऋषीसंत एक आत्म स्वभावकी धुन रखते हुए स्वरूप दर्शन करके स्वभावमें ही लीन हो गए उनके घातिया कर्म, विकट कर्म दूर हो जाते हैं। तब देहमें रहते हुए भी वे ऋषि परम आत्मा बन जाते हैं। इस आत्मामें यह परमपना आनेसे ऐसा एक चमत्कार होता है कि वह शरीर भी स्फटिक मणिकी तरह शुद्ध और स्वच्छ कान्तिमान हो जाता है और फिर यह शरीर छायाका कारण नहीं बनता। प्रभुके शरीरकी छाया नहीं होती। तब वह शरीर ऐसा स्थिर होता है कि उनके आँखोंके पलक भी नहीं गिरते उठते। हम आपके तो ये पलक गिरते उठते ही रहते हैं. कुछ पता भी अपनको नहीं पड़ता। तो इसमें रागका, अपनी कमजोरीका असर है। हम आपमें राग चल रहा है, इस कारण पलकोंका गिरना उठना हो रहा है। प्रभु तो अब वीतराग सर्वज्ञ हो चुके अतएव अब उनके पलक गिरते उठते नहीं हैं। इतनी धीरता उनमें होती है। कुछ लोग तानते हैं कि भगवान लोगोंसे मिलते भी हैं, बातचीत भी कर लेते हैं। लेकिन, वे प्रभु इस पृथ्वीपर नहीं चलते हैं, स्वभावतः

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्भार होनेके कारण परम ज्योति स्वरूप होनेके कारण वे इस पृथ्वीसे बहुत ऊँचे उठ कर आकाशमें ठहरते, आकाशमें ही वे विहार करते। शरीरका जरासा सम्बन्ध रह गया अन्यथा यहाँ भी न ठहरते और लोकके अन्तमें विराजमान होते। लेकिन स्फटिक मणिकी तरह उसका शरीर रहनेके कारण और आत्माके परम ज्योति स्वरूप होनेके कारण वे पृथ्वीपर न रहकर आकाशमें रहते हैं। हाँ उन प्रभुके चार घातिया कर्म तो नष्ट हो गए अर्थात् ऐसे कर्म जो ज्ञानपर आवरण करते थे नष्ट हो गए, दर्शनपर आवरण करते थे नष्ट हो गए मोह उपजाते थे नष्ट हो गए, जो उनके आनन्दमें बाधा डालते थे, हम अपने आपमें स्थिरतासे समाये रहें ऐसी शक्तिमें बाधा डालते थे वे कर्म प्रभुके समाप्त हुए, लेकिन अभी चार अघातिया कर्म शेष हैं वेदनीय कर्म नाममात्रके लिए। जो पहिले सुख दुःखके अनुभवका कारण बनता था वह शेष है। आयु कर्म, जिसके उदयसे जीवको शरीरमें रुका रहना पड़ता था, वह शेष है। जिसके उदयसे शरीर रचना हुई थी वह नाम कर्म है जिसके उदयमें ऊँच नीच कुल कहलाया जा रहा था वह भी है। उनमेंसे आयुकर्म तो मानो रह गया १०–१५ मिन्टोका, बाकी तीन कर्म करोड़ों वर्षोंकी स्थितिके हैं तो मोक्ष उनका होगा तो कैसे होगा ? पहिले आयु नष्ट हो जायगी, नाम कर्म रहेगा यह बात कल्पनामें नही उतरती। उनके शेष चारो कर्म एक साथ नष्ट होंगे और उनका मोक्ष होगा। ऐसी स्थितिमें स्वभावतः उन प्रभुके आत्माके प्रदेश पहिले दण्डके आकार लोकके नीचेसे ऊपर तक फैल जाते हैं। आत्मा ही फैल गया, फिर अगल बगलके प्रदेश फैलते हैं, फिर आगे पीछेके प्रदेश फैलते हैं, ऐसा सर्व ओर पूरे फैल जानेपर भी वातवलय शेष रह गया। फिर वातवलयमें फैलते हैं तो एक समय यह लोकपूरणका ऐसा आता है कि जिसमें आत्मा लोकाकाशमें सर्व-व्यापक हो गया। फिर तुरन्त ही प्रतर कपाट और दंडकी तरहका आकार होकर फिर शरीर मात्र हो जाता है ? इतने काममें वे तीन कर्मके करोड़ों वर्षोंकी स्थितियाँ आयुके बराबर हो जाती हैं। जैसे गीली धोती फैला देनेसे झट सूख जाती है इसी प्रकार उस समय आत्म प्रदेशके फैल जानेसे कर्मोंकी स्थिति सूख जाती है। उस समय लोकाकाशमें व्यापक रहा शेष समय तो आत्मा आवान्तर परिमाण वाला ही है।

तृतीय अनुमानसे आत्माके अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्वकी सिद्धि—इस प्रसंगमें यह सिद्ध किया जा रहा है कि आत्मा न तो परमाणु बराबर एक प्रदेशी है और न आकाशकी तरह सर्वव्यापक है, किन्तु आवान्तर परिमाण वाला है। अणुसे अधिक और आकाशसे कम जब जब जिस जिस देहमें रह रहा है उस प्रमाण आत्मा है। अब इसी बातको तृतीय अनुमान द्वारा सिद्ध कर रहे हैं, आत्मा अणु एवं परम महा परिमाणका अधिकरण नही है अर्थात् न तो अणु परिमाण एक प्रदेशी है और न आकाशवत् उत्कृष्ट महान परिमाण वाला है क्योंकि क्रियावान होने से। जो जो पदार्थ क्रियावान होते हैं, जिनमें गति होती है वे पदार्थ न तो अणु परिमाण वाले हैं और न परम महान परिमाण वाले हैं। जैसे–गेंद, बाण आदिक जो जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी गतिशील हैं वे न तो अणु बराबर हैं और न आकाशवत् सर्वव्यापक है यद्यपि अणु एक प्रदेशी होकर भी क्रियावान अवश्य है, तथापि प्रसंगमें एक व्यवहारिक साध्य है अणुकी गतिशीलता पुरुषकी चाहके अनुकूल नहीं है न प्रयोगाश्रित है, वह स्वयं अपने आप ही अपने निमित्तसे गमन कर रहा है। जैसे वाण आदिक जिस किसी भी दिशा से छोड़े जायें तो वे क्रियावान हैं, आवान्तर परिमाण वाले हैं इसी प्रकार यह आत्मा भी सर्वत्र जा रहा है अतः क्रियावान है। मैं एक योजन चला, मैं एक कोश चला, इस प्रकारके गमनागमनकी जो प्रतीति हो रही है इससे भी सिद्ध है कि आत्मा क्रियावान है। और जब क्रियावान है आत्मा तो यह आवान्तर परिमाण वाला है। आवान्तरका अर्थ है परम महान परिमाणके भीतर व अणु परिमाणके ऊपर कुछ ही परिमाण वाला। यहाँ शंकाकार कहता है कि मन और शरीर ये भी तो आते जाते हैं तो उनमें यह शरीर तो आवान्तर परिमाण वाला है, यह तो बात प्रसिद्ध है लेकिन मन तो अणु परिमाण वाला क्रियावान होरहा है मन आया मन गया तब तुम्हारा हेतु सदोष होगया उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नही है। मनके बारेमें किसीको अहं प्रत्ययकी मुद्रा नही उठती। मैं आया, मैं गया ऐसा मैं के द्वारा जो वाच्य हो रहा है वह आत्मा है मन नही है। यदि मनको ही मान लिया जाय आत्मा और फिर मन अणु परिमाण है ऐसा मानकर दोष दिया जाय तो इ में लौकिकमतका प्रसंग आ जायगा। अर्थात् मन ही जीव बन गया। चारुवाक् सिद्धान्त आ जायगा, फिर जीव कुछ नही रहा। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके संयोगसे चेतनकी उत्पत्ति होती है, फिर इस सिद्धान्तमें और मनको आत्मा माननेमें जिसमें कि हेतुका दोष देते तो उस सिद्धान्तमें और इसमें फिर फर्क न रहेगा। यह आत्मा क्रियावान है, इसमें प्रत्यक्ष काम देता है और अनुमानसे भी सिद्ध होता है कि जो जो क्रियावान हो वह वह आवान्तर परिमाण वाला हुआ करता है। आत्मा क्रियावान है इस कारण यह अणु प्रमाण व आकाशवत् महान नही है अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापक नही है। इसी बातको अब चतुर्थ अनुमानस सिद्ध करते हैं।

चतुर्थ अनुमानसे आत्माके अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्वकी सिद्धि

आत्मा परम महान परिमाणका अधिकरण नही है अर्थात् आवान्तर परिमाण वाला है चेतन होनेसे। जो–जो आवान्तर परिमाण वाले नही होते वे चेतन भी नही हैं। जैसे आकाश और परमाणु आदिक। जहाँ द्रव्यकी ये ६ जातियाँ मानी हैं – जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। वहाँ भी आप व्यापकताका माध्यम लोकाकाश मानकर यह परखलेंगे कि आवान्तर परिमाण वाला कोई जीव पदार्थ ही होता है उन छह द्रव्योंमेंसे। पुद्गल एक प्रदेशी है। स्कंधको देखकर संख्यात असंख्यात् अनन्त प्रदेश कहना यह उपचरित कथन है। शरीरमें भी यह परमाणु ही पुद्गल है। तो पुद्गल एकप्रदेशी है। धर्मद्रव्य महापरिमाण वाला है। यह लोकाकाशके बराबर है, इसका महा परिमाण लोकाकाशके बराबर समझना। अधर्म द्रव्य महापरिमाण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाला है। आकाश परम महापरिमाण वाला है और कालद्रव्य एक प्रदेशी है। केवल जीवद्रव्य ही ऐसा है कि जिसका आवान्तर परिमाण है। चेतन होनेसे भी यह सिद्ध होता है कि आत्मा आवान्तर परिमाण वाला है। यह चर्चा वैशेषिक सिद्धान्त वालोंसे की जा रही है। वैशेषिक सिद्धान्तवाले धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको मानते ही नहीं। तो उनकी दृष्टिसे आकाश और परमाणु दो ही उदाहरण दिये जा सकेंगे। आत्मा एक प्रतिभासस्वरूप पदार्थ है, जिसका कार्य जानन है। और प्रकाशमात्र जो पदार्थ होता है वह पदार्थ उपाधिका निमित्त पाकर संकोच और विस्तार धर्मको लिए हुए हुआ करता है। जैसे दीपक घड़ा आदिक आवरणका निमित्त पाकर दीपक, घड़े परिमाण वाला रहता है। यदि कोई बड़ी सीमाका पदार्थ आवरणमें हो, कमरेमें रख दिया तो कमरा प्रमाण प्रकाश है, बाहर रख दिया तो कुछ और अधिक प्रकाश है। यों ही समझिये कि आत्मा है प्रकाशस्वरूप। इसमें विकास है चैतन्य जातिका, तो जब जब जिस जिस देहमें बसता है उस देह प्रमाण इस आत्माका परिमाण होता है।

आत्माके अणुपरममहापरिमाणानधिकरणत्वके विरुद्ध शङ्काकारकी शङ्का—शङ्काकार कहता है कि जो यह प्रतिज्ञा की गई है कि आत्मा उत्कृष्ट महान् परिमाणका अधिकरण नहीं होता। यह प्रतिज्ञा अनुमानसे बाधित है। उसका बाधक यह अनुमान है कि आत्मा व्यापक है, अणुपरिमाणका अनधिकरण होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे आकाशकी तरह। जैसे कि आकाशका अणुपरिमाणका अनधिकरण है अर्थात् अणु बराबर उसका परिमाण नहीं है और फिर नित्य द्रव्य है अतएव व्यापक है। इसी प्रकार आत्मा परमाणु बराबर तो है नहीं और है नित्य द्रव्य, इस कारण व्यापक हो जायगा। यह आत्मा अणुप्रमाण परिमाणका अधिकरण नहीं है, यह बात हम लोगोंके प्रत्यक्ष विशेष गुणका आधार होनेसे सिद्ध है घट पट आदिककी तरह। जैसे घट आदिक हम लोगोंके प्रत्यक्षमें आ रहे हैं और अणुपरिमाण भी नहीं है। अब आत्माके नित्यत्वका परिचय करलें आत्मा नित्य द्रव्य है, क्योंकि अस्पर्शवान द्रव्य होनेसे। जैसे कि आकाश अस्पर्शवान द्रव्य है इस कारण नित्य है। यों शंकाकारने आत्माको परम महापरिमाणका अधिकरण सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया है।

अणुपरिमाण प्रतिषेधके परममहापरिमाणरूप पर्युदास अर्थमें हेतुकी साध्य समताका दोष—इस शंकाका अब समाधन करते हैं कि इस शंकाकारने जो हेतु बनाया है कि अणु पमिाणका अनधिकरण होकर भी नित्य द्रव्य होनेसे तो आत्मा में जो अणु परिमाणका निषेध किया है सो क्या यह पर्युदास रूप है या प्रसज्यरूप? पर्युदास कहते हैं एकका अभाव अन्यके सद्भाव रूपसे बतानेको और प्रसज्य कहते हैं कि उस अभावके अन्दर कुछ भी न समझना, केवल तुच्छ अभाव। तो इन दोनों भावोंमेंसे यदि पर्युदासरूप प्रतिषेध मानते हो तो पर्युदास होता है अन्य भावोंके स्वीकार पूर्वक। यहाँ कर रहे हो अणु परिमाणका निषेध, जिसका अर्थ होता है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अणु परिमाण रूप तो नही है, किन्तु अणु परिमाणसे भिन्न परिमाण वाला है तो अणु परिमाणसे जो भिन्न परिमाण वाला पर्युदासमें सिद्ध हो रहा है तो वह भिन्न परिमाण क्या है ? क्या परममहापरिमाण वाला सिद्ध कर रहे हो या आवान्तर परिमाण वाला यने अणु परिमाण नही, महा परिमाण नही किन्तु उसके बीचके परिमाण वाला । यदि अणु परिमाणके प्रतिषेधको पर्युदास रूप मानकर परम महा परिमाण रूप मानना चाहते हेतुमें कहकर तो यह तो हेतुका विशेषण साध्यसम हो गया । अर्थात् साध्य सिद्ध करना चाहते हो परम महा परिमाण और हेतु भी दे रहे हो परम महा परिमाणका, क्योंकि अणु परिमाणका प्रतिषेध करके परम महा परिमाणको तो विवक्षित बना रहे हो । जैसे कोई कहे कि शब्द अनित्य है अनित्य होने पर बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे । तो साध्यमें भी अनित्यपना सिद्ध कर रहे हो और हेतुमें भी अनित्यपना ही बता रहे हो तो यहाँ भी जैसा ही तुम साध्यको सिद्ध करना चाहते वैसा ही तुम हेतु बना रहे हो तो यह हेतु साध्यसम होनेसे साध्य साधक नही बनता, इस प्रकार शंकाकारने जो अनुमान बनाया कि आत्मा व्यापक है अणु परिमाण वाला न होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे । तो अणु परिमाण वाला नही, इसका अर्थ ले लिया परम महापरिमाण वाला, तो सीधा यही तो निष्कर्ष निकला कि आत्मा व्यापक है व्यापक होनेसे । तो साध्यसम हेतु भी क्या हेतु कहला सकता है ? इस कारण अणु परिमाण प्रतिषेधका पर्युदास रूप अर्थ करके परम महापरिमाण हेतुमें नही कह सकते ।

अणुपरिमाण प्रतिषेधका आवान्तर परिमाणरूप पर्युदास अर्थ हेतुकी विरुद्धता—यदि दूसरा पक्ष लेते हो कि अणुपरिमाणका प्रतिषेध करके हम आवान्तर परिमाण ले रहे हैं तब तो यह विरुद्ध हेतु हो गया । शंकाकार के लिए विरुद्ध हेतु हो गया । जैसे कि कभी कोई कहे कि शब्द नित्य है अनित्यत्व होनेपर बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे । तो हेतु दे रहे हो अनित्यपनेका और सिद्ध करना चाहते हो नित्यपना । अनित्यपनेकी व्याप्ति अनित्यसे ही तो होगी । तो अनित्यत्व हेतु देकर सिद्ध तो होगा साध्यका विपरीत अर्थात् साध्य यदि है नित्य और होगा अनित्य ही सिद्ध तो इसी तरह इस हेतुमें कि आत्मा व्यापक है अणुपरिमाणका अनधिकरण होनेपर अर्थात् आवान्तर परिमाण वाला होनेपर नित्य द्रव्य होनेसे । तो जब आवान्तर परिमाण वाला यह हेतु कहकर ही स्वीकार करलिया तो फिर उससे व्यापक मानना यह विरुद्ध हो गया । इससे अणुपरिमाण प्रतिषेधका पर्युदासरूप अर्थ ठीक नही बैठता ।

अणुपरिमाणप्रतिषेधके प्रसज्यरूपत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि अणु परिमाणप्रतिषेधको प्रसज्यरूप मानेंगे । प्रसज्य कहते हैं तुच्छाभाव को । तो तुच्छ स्वभाव वाला अभाव प्रमाणका विषयभूत नही है । ऐसा अभाव जिसमें कुछ भी न समझा जाय वह प्रमाणका विषय नही हो सकता । और, यदि प्रमाणका विषय हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय तो फिर यह बतलावें कि यह तुच्छ स्वभावरूप अभाव क्या साध्यका स्वभाव है अथवा कार्य है ? साध्य हुआ व्यापकत्वविशिष्ट आत्मा। इस अनुमानमें शंकाकार आत्माको व्यापक ही तो सिद्ध कर रहा है तो व्यापकतासे सहित आत्माका स्वभाव है क्या तुच्छाभाव ? अथवा व्यापकत्व विशिष्ट आत्माका कार्य है ? यदि कहो कि यह स्वभाव है साध्यका तुच्छाभाव व्यापकत्वविशिष्ट आत्माका स्वभाव है, तो इसका अर्थ यह हुआ ना, कि साध्य भी तुच्छाभावरूप हो गया। तो यों तुच्छाभावको साध्य का स्वभाव नही कह सकते। यदि कहो कि वह तुच्छाभाव तो साध्यका कार्य है तो यह भी बात युक्त नही, क्योंकि तुच्छ स्वभावरूप अभावके कार्यपनेका योग हो ही नही सकता, क्योंकि कार्यपना नाम है किसका ? पहिले यह ही निर्णय करो। क्या अपने कारणमें सत्ताके समवाय होनेका नाम कार्यपना है या 'कर दी गयी' इस प्रकारकी बुद्धिका विषय बनना कार्यपना है। पहिला पक्ष तो युक्त नही है अर्थात् अपने कारणमें सत्ताका समवाय होना इसका नाम कार्यपना है, यह बात यों युक्त नही कि यहाँ अभाव माना है तुच्छाभाव और उस तुच्छाभावका अपने कारणमें सत्ताका समवाय हो नही सकता। स्वयं वैशेषिक सिद्धान्तवादियोंने भी नही माना, अन्यथा अर्थात् अभाव अपने कारणमें सत्ताका समवाय करदे तो अर्थ हुआ कि वह अभाव भावरूप हो गया फिर तो अभावकी भावरूपता ही हो गई। तुच्छाभाव तो न रहा। यदि कहो कि कार्यपने का अर्थ हम कृतबुद्धि विषयत्व अर्थात् किया गया इस प्रकारकी बुद्धिका विषयपना होना यह है कार्यपना, तो यह बात यों युक्त नही है कि तुच्छ स्वभावरूप अभाव बुद्धि का विषय नही बन सकता, क्योंकि जब अभाव प्रमाणका विषयभूत नही है तब फिर अभावमें कृतबुद्धिविषयता कैसे सम्भव हो सकती है अर्थात् "यह किया गया" इस प्रकारकी बुद्धिका विषय तुच्छाभाव बन जाये, यह कैसे सम्भव है ? साथ ही इस हेतुमें अनैकांतिक दोष भी आया है। यहाँ शंकाकार द्वारा अभिमत अनुमान यह बन गया कि अणुपरिमाण प्रतिषेध रूप तुच्छाभाव रूप कार्य है कृतबुद्धि विषय होनेसे। तो देखो कि खान खोदनेके अनन्तर आकाशमें भी कृतबुद्धि विषयता तो बन जायगी पर कार्यपना नही बनता। यहाँ यह अनुमान बनाना आवान्तर कि जो जो कृतबुद्धि विषय होता है वह कार्य होता है, तो देखिये कि आकाशमें कृतबुद्धिता तो हो गई, खानके खोदनेसे जैसे यह व्यवहार बनता है कि आकाश बड़ा हो गया, अब आकाशका यह आकार बन गया तो इस प्रकार कृतबुद्धि विषयता तो हुई पर उस आकाशमें कार्यपना नही आया। इस कारण यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है।

परमहापरिमाण सिद्ध करनेके लिये अणुपरिमाणप्रतिषेध सिद्धिमें दिये गये हेतुमें मिथ्यात्वकी मीमांसा—अणुपरिमाण प्रतिषेधमें दिये गये हेतुमें जो नित्य द्रव्यपना बताया गया है सो नित्य द्रव्यत्व क्या कथंचित् कह रहे हो या सर्वथा कह रहे हो ? यदि कहते हो कि कथंचित् नित्य है तो घट आदिक पदार्थोंके साथ अनेकान्त दोष आता है। देखो ! घट आदिक पदार्थ कथंचित् नित्य द्रव्य तो हैं और अणु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिमाणके अनधिकरण भी हैं अर्थात् आपका हेतु इसमें पूरा पाया गया फिर भी व्यापिपना नही है घट कहाँ है सर्वव्यापक यदि कहो कि हम सर्वथा नित्यपना सिद्धकर रहे हैं तो यह असिद्ध है, सर्वथा नित्य वस्तु कुछ होती ही नही है। सर्वथा नित्य वस्तु अर्थक्रियाको नही कर सकती। अतएव अश्वविषाणकी तरह असत् है, और फिर दूसरी बात यह है कि हम लोगोंके प्रत्यक्ष विशेष गुणका अधिकरण होनेसे जो अणुपरिमाण का प्रतिषेध किया जा रहा है तो उससे अणुपरिमाणका प्रतिषेध मात्र ही सिद्ध होगा घट आदिककी तरह। सो यह बात तुम्हें इष्ट ही है। आत्मा अणुपरिमाण वाला नही है, अस्पर्शवान द्रव्यपना होनेसे जो आत्माको नित्य सिद्ध किया जा रहा है वह भी क्या कथंचित् नित्य सिद्ध किया जा रहा है या सर्वथा नित्य सिद्ध किया जा रहा है ? यदि कथंचित् नित्य सिद्ध कर रहे हो तो हेतु अन्वय रहित हो गया। अर्थात् इस प्रकारके साध्यसे व्याप्त हेतुका दृष्टान्तमें सत्त्व नही रहता, क्योंकि आकाश आदिक भी सर्वथा नित्य नही है। ऐसा पहिले बता दिया गया है इस कारण आत्मा परम महापरिमाण का अधिकरण नही है। इस प्रतिज्ञामें जो शंकाकार अपने अनुमानसे बाधा दे रहा है वह बाधा इस प्रतिज्ञामें नही रहती।

देहान्तर व अन्तरालमें भी एक ही आत्माको सिद्ध करनेका शंकाकारका अनुमान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि समाधानकारने जो यह कहा कि आत्मा यदि सर्वव्यापक होता तो दूसरे देह में आत्माकी प्रतीति होनी चाहिये थी और एक देह व दूसरे देहके बीचमें जो अन्तराल पड़ा है पोल, वहाँपर भी आत्माकी प्रतीति होनी चाहिये थी, किंतु होती नही है। मैं जो विचार करता तो अपने ही विचारोंका ज्ञाता होता हूँ, दूसरेका ज्ञाता नही होता। अथवा दूसरा कोई मेरे विचारों का ज्ञाता नही बनता, और अन्तरालमें भी हमको आपको, भी सुख दुःख आदिककी प्रतीति नही होती। इससे आत्मा सर्वव्यापक नही है। इस तरह समाधानकारने जो बात कहा वह अयुक्त है। अनुमानसे आत्मामें सब जगह आत्माकी सत्ताकी प्रतीति होती है। अर्थात् आत्मा एक है, सर्वव्यापक है, दूसरे-दूसरे सब देहोंमें भी वही एक आत्मा है। देहोंके बीचके अन्तरालमें भी बराबर वही आत्मा है। उसका अनुमान सुनो ! जैसे कोई देवदत्त नामका पुरुष है, उसका उदाहरण देकर अनुमान प्रयोग करेंगे। देखिये ! देवदत्तको किसी देशकी सम्पदा मिलती है, किसी देशकी स्त्री मिलती है अर्थात् जैसे सम्बन्ध विवाह होता है तो देवदत्तका जिस कन्यासे सम्बन्ध हुआ तो उस जगह हुआ क्या कि उस स्त्रीका अङ्ग या वह पिण्ड देवदत्तके गुणपूर्वक है क्योंकि कार्य होनेपर उपकारक होनेसे।

देहान्तर और अन्तरालमें एक आत्माको सिद्ध करने वाले शंकाकारके अनुमानमें आद्य ज्ञातव्य—इस सम्बन्धमें वैशेषिक सिद्धान्तका अभिमत जान लीजिए आत्मा एक है सर्वव्यापक है और आत्माके साथ भाग्य भी लगा है, जिसका नाम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अदृष्ट है। तो देवदत्तका भाग्य कहाँ तक फैला है? जहाँ तक आत्मा है वहाँ तक भाग्य भी फैला हुआ है। तो जैसे मान लीजिये कि ५० मील दूर रहने वाले प्राप्य पदार्थके पास इस देवदत्तका भाग्य है क्योंकि आत्मा है सर्वव्यापक। आत्माके साथ भाग्य भी लगा है तो उस ५० मील दूर रहने वाले भाग्यने उस स्त्रीको खोजा और देवदत्तके पास वह भाग्य ले आया। या जो वैभव मिलता है देवदत्तको, १०० मील दूरकी सम्पदा देवदत्तके पास आ गयी तो किस तरह कि देवदत्तका भाग्य जो १०० मील तक फैला हुआ है वह भाग्य उसे देवदत्तके पास हाजिर कर देगा। तो देखो! वह भाग्य क्या? अदृष्ट ही तो है। तो देवदत्तके गुणपूर्वक देवदत्तकी सम्पदा स्त्री आदिक ये सब कार्य हैं ना, और देवदत्तके उपकारक हैं। उस सम्पदाका, स्त्रीका जो जो कुछ भी उसके पास वैभव आयगा उसका वह मौज ही तो मानेगा, कल्पना ही तो करेगा, राजी ही तो होगा। तो देवदत्तने उपयोग किया। जो जो देवदत्तका उपकार करने वाले हैं वे वे सब देवदत्त के गुणपूर्वक हुए हैं। यहाँ गुणसे मतलब पुण्य पाप, पुण्य पाप भी आत्माका गुण है। धर्म अधर्म ये भी गुण माने माने गए हैं वैशेषिक सिद्धान्तमें। तो यहाँ वैशेषिकवादी यह सिद्ध कर रहा है कि देवदत्तको ये सारी चीजें तभी मिलती हैं जब कि आत्मा सर्वव्यापक है और उसका भाग्य भी उतनी दूर तक उसके साथ फैला हुआ है। जैसे—ग्रास भोजन। लोग कहते हैं ना, कि दाने दानेपर मोहर लगी हुई है। वह आत्मा सर्वव्यापक है और भाग्य भी सब जगह फैला हुआ है। तो जब जो दाना इसका उपकारक बनेगा तब भाग्य उस दानेको खींचकर लायगा और उसका वह देवदत्त उपभोग करेगा। तो इस बातसे सिद्ध हुआ ना, कि आत्मा सर्वव्यापक है। जहाँ कार्यपना है उस जगह कारण होगा तभी तो उस कार्यकी उत्पत्ति हुई है। देवदत्तकी जो सम्पदा बनेगी अथवा आकर्षित होकर आया जैसे देवदत्त रह रहा है मुजफ्फरनगरमें और सम्पदा बन रही है उसकी अहमदाबादमें ओ अहमदाबादमें जो देवदत्तका काम बना उस जगह कामका कारण अवश्य होगा। तब तो वहाँ कारण बना। कार्य देशमें कारण हो तब ही कारणका कार्यकी उत्पत्तिमें व्यापार हुआ करता है तो वहाँ भाग्य मानना पढ़ा ना। तो आत्मा सर्वव्यापक है और उसके साथ लगा हुआ है भाग्य और उस भाग्यके कारण वह देवदत्तकी सम्पदा बन गई, देवदत्तका काम बन गया। इससे सिद्ध है कि आत्मा सर्वव्यापक है।

दूरदेशमें अदृष्टकी सिद्धि करके अदृष्टाश्रय आत्माके सद्भावकी सिद्धि का शंकाकारका प्रयास—अच्छा, उस सम्बन्धमें तुम और ज्यादा बात नहीं मान सकते तो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जहाँ स्त्री, सम्पदा उस देवदत्तकी होती है वहाँपर देवदत्तका भाग्य तो मौजूद है तो उसकी चीज कैसे बन जायगी? क्या कहीं देखा है ऐसा कि कामकी जगह कारण न हो और काम बन जाय? जब १०० मील दूर देवदत्तका काम बन रहा तो लोग कहते हैं जब बहुत वैभव होता है कि इतना बड़ा काम इसका बन रहा है तो वह काम बिना कारणके नहीं बनता। वहाँ कारण क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है ? देवदत्तका गुण। तो देवदत्तका गुण इतनी दूर मानना ही पड़ेगा, और जब मान लिया गया तो निश्चय है कि जहाँ गुण है वहाँ गुणी जरूर है। गुणीके आधार बिना गुण कैसे रह सकता है ? इस तरह यह सिद्ध है कि आत्मा सर्वव्यापक है और सर्वव्यापक होनेपर ही यह सब भाग्यकी व्यवस्था बनती है, नही तो भाग्यकी कुछ भी व्यवस्था नही।

ज्ञानदर्शनसुखादिगुणपूर्वक स्त्रीसंपदादिकार्यकी असिद्धि—शंकाकारके इस कथनपर अब समाधानमें कहते हैं कि ऐसा सोचना कि देवदत्तको जो जो कुछ मिल रहा है दूसरे गांवकी सम्पदा, दूसरी जगहकी सगाई सम्बन्ध, वह सब देवदत्तका भाग्य उतनी दूर तक पड़ा है और वहाँसे वह खींचकर लाता है अथवा वहींका वहीं वह काम बना देता है, इससे सिद्ध है कि वहाँ भाग्यवान भी मौजूद है। यह कहना और इस कथनसे यह बात सिद्ध करना कि वे सब दूर देशके काम देवदत्तके गुणपूर्वक होते हैं, यह कथन असत्य है, क्योंकि देवदत्तकी स्त्री सम्पदा आदिक कार्यके कारण रूपसे माने गए जो गुण हैं वे गुण क्या हैं सो बतलावो ? क्या ज्ञान, दर्शन, सुख आदिक है अथवा धर्म अधर्म है। जो यह कहा कि दूर देशकी सम्पदा स्त्री जो देवदत्तको मिली सो देवदत्तको मिली सो देवदत्तके गुणके कारण मिली । देवदत्तका गुण वहाँ मौजूद था तब मिली। तो वह गुण क्या चीज है ? क्या पुण्य पापका ही नाम गुण कह रहे हो ? या ज्ञान दर्शन सुख आदिकका नाम गुण कह रहे हो ? यदि ज्ञान दर्शन सुख आदिकका नाम गुण कहते हो कि इस गुण पूर्वक स्त्री, सम्पदाका कार्य बना है तो यह बात तो स्पष्ट अयुक्त है। देखो ? देवदत्तका ज्ञान, देवदत्तका दर्शन, देवदत्तका सुख ये तो स्वसम्वेदन गम्य हैं स्वसम्वेदनते स्वभाव वाले हैं और वे कहीं बाहरमें स्त्री सम्पादके कार्यकी उत्पत्तिके व्यापार करते हो यह सम्भव नही है। अपने अनुभवसे विचार लो। मेरा ज्ञान दर्शन सुख जो भी काम करेगा, वह वहाँ ही करेगा जहाँ कि अनुभव बन रहा है, हमारा ज्ञान दूर देशकी सम्पदा स्त्रीको खींचकर नही लाता, यों ही दर्शन और सुख आदिक कोई भी देवदत्तके गुण पूर्वक वह सम्पदा कार्य है ऐसा कहनेमें जिस गुणको कारण बनाया है वह गुण ज्ञान दर्शन सुख आदिक नही सिद्ध होता। यदि कहो कि वीर्य अथवा शक्ति नामका गुण है, देवदत्तकी शक्ति उतनी दूरसे खींचकर लाती है या वहीं कार्यको बना देती है तो भाई शक्ति भी देहमें ही अनुमित होती है। देहमें ही शक्ति कारणकी क्रियाकी प्रतीति होती है, इससे यह सिद्ध न हो सका कि देवदत्तके ज्ञान दर्शन सुख आदिक गुणपूर्वक दूर देशके काम हुआ करते हैं और फिर जब प्रत्यक्षसे इसमें बाधा आ गयी कि देवदत्तके देहमें ही जो कि दूर देशकी सम्पदा, स्त्री आदिकके कार्यसे विमुख है उस कार्यकी ओर ज्ञान दर्शन सुखका कोई रुझान नही है। ऐसा जब अध्यक्षसे प्रतीत हो रहा है उसमें बाधा आ रही है और फिर ज्ञान दर्शन सुख आदिक गुणपूर्वक स्त्री संपदा आदि कार्य बताओ तो प्रत्यक्ष बाधित है। इसलिए यह हेतु देकर कि कार्य होनेपर देवदत्तकी वह क्रिया कार्य उपकार है इस कारण वह कार्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देवदत्तके गुणपूर्वक है, यह अनुमान सही नही बैठता।

पुण्य पाप याने अदृष्टमें चेतनगुणत्वका अभाव होनेसे अदृष्टके माध्यमसे आत्माके सर्वगतत्वकी सिद्धिका अभाव—यदि कहो कि देवदत्तके जिस गुणके कारण दूर देशकी सम्पदा देवदत्तके पास खिचती चली आई है या वहीं ठहरकर देवदत्तका काम बन गया है सो वह गुण है धर्म अधर्म पुण्य पाप। अब शंकाकार कुछ ठिकानेके विकल्पोंपर आया। यद्यपि यह भी पूर्णतया सिद्ध नही होता, लेकिन ज्ञान आदि गुणोंसे तो एकदम स्पष्ट बाधा आती है। और, ये लोग कुछ ऐसा अंदाज करते हैं कि भाग्य इस जीवका बहुत विशाल है और भाग्यसे ही सारी चीजें मिलती हैं। यों समझकर यह कहा कि पुण्य और पाप उस सम्पदा और वैभव समागमका कारण है, तो इसके समाधानमें कह रहे हैं कि तुम्हारी बात तो हमें भी इष्ट है कि देवदत्तको जो कुछ भी वैभव प्राप्त हो रहा है वह देवदत्तके भाग्यके निमित्तसे हो रहा है, अदृष्ट निमित्त है, यह हम लोगोंको भी इष्ट है, लेकिन वह अदृष्ट आत्माका गुण है यह बात असिद्ध है, पर आत्माका गुण नही कहलाता भाग्य। भाग्य क्या चीज है? लोग जिसे कर्म तकदीर आदिक शब्दोंसे कहते हैं वह है भाग्य! भाग्यके कहने वाले लोग तो हैं अनेक, पर भाग्यका क्या स्वरूप है? क्या मुद्रा है? क्या आकार है? क्या प्रकृति है? इसके जानने वाले लोग विरले ही हैं। यह जीव जिस कालमें शुभ अथवा अशुभ भाव बनाता है, कषाय करता है तो उस कषाय परिणामका निमित्त पाकर यहाँ ही फैली हुई जो सूक्ष्म कार्माण वर्गणायें हैं, सूक्ष्म आवरण है, वातावरण है, वे सब कषायोंका निमित्त पानेसे पहिले अन्य स्थितिमें थीं और कषायोंका निमित्त पानेसे पहिले अन्य स्थितिमें थीं और कषायोंका निमित्त पाकर वे कर्मरूप बन गए। वह ही भाग्य कहलाने लगा। तो वह भाग्य अचेतन है, चेतन भी नही है. चेतनके जो गुण हैं वे सब चेतन होंगे। तो धर्म अधर्म आत्माके गुण नही हैं अचेतन होनेसे। जो-जो अचेतन हैं वे आत्माके गुण नही हो सकते। अथवा जो जो गुण हैं आत्माके वे चेतन स्वरूप ही होंगे।

सुखकी चेतनगुणता होनेसे पुण्य पापमें आत्मगुणत्वाभाव सिद्ध करने वाले हेतुकी अबाधितता—यहाँ शंकाकार कहता है कि जो जो अचेतन होते हैं वे आत्माके गुण नही हैं, सो यह हेतु बाधित है। देखो! इस हेतुमें सुख आदिकके द्वारा व्यभिचार आ गया, याने सुख अचेतन है फिर भी आत्माका गुण है। तुम्हारा जो यह कहना था कि जो जो अचेतन होते हैं वे आत्माके गुण नही होते, लेकिन यह सुख अचेतन है। सुखमें कहाँ चेतना बसी है? सुख कहाँ समझदार है और देखो! सुखके गुण, सो बराबर हैं। उत्तरमें कहते हैं कि यह दोष देना ठीक नही है। सुख अचेतन नही है। अचेतनका विरोधी स्वसम्वेदन लक्षण चेतनके साथ सुखकी व्याप्ति है अर्थात् सुख चैतन्यात्मक है। यद्यपि सुखका स्वरूप, स्वयं सुखका लक्षण चैतन्यधर्मात्मक नही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, याने सुख ज्ञानके द्वारा अनुभवमें आता है। सुख स्वयं अपनेको सुखरूपसे अनुभव नहीं करता, लेकिन ज्ञानका अधिकरण है, आत्मा और सुखका भी अधिकरण है, आत्मा अर्थात् ज्ञान कहाँ है ? आत्मामें ! सुख कहाँ है ? आत्मामें ! तो सुख और ज्ञान इन दोनोंका एकाधिकरण है चेतन आत्मा। तो चेतनाका ही आधार आत्मा है, तो उस आत्मामें जो जो कुछ भी आधेय है, जो जो कुछ भी गुण है वे चेतन हैं ही, तो गुण कहलायेगा। अचेतन पदार्थके गुण तो नहीं हैं और जो चेतनके गुण हैं वे चेतनात्मक हैं। जिस पदार्थके जो गुण होते हैं वे गुण उस पदार्थके स्वभावात्मक ही होंगे। भेदकी बात एक लक्षण दृष्टिसे फर्क करनेकी है, पर इतने मात्रसे सुखको चेतन का गुण तो नहीं कहा जा सकता। चेतनका गुण चेतन होता है, अचेतनका गुण अचेतन होता है। यह लक्षण विवेचनाकी बात है उसे रहने दिया जाय, यहाँ तो गुण गुणीकी चर्चा चल रही है। तब यह अनुमान बनाया गया कि धर्म अधर्म अर्थात् पुण्य और पाप आत्माके गुण नहीं हैं अचेतन होनेसे।

पुण्य पापमें चेतनगुणत्वका अभाव—इस अनुमानमें अचेतनत्व हेतु असिद्ध नहीं है अर्थात् पुण्य और पाप अचेतन हैं क्योंकि यह अपने ग्रहणसे विधुर है अर्थात् पुण्य पाप अपने आपका सम्वेदन करनेसे रहित हैं पट आदिककी तरह। जैसे ये घट, पट, चौकी, दरी, बेंच आदिक। ये अपने आपको ग्रहण तो नहीं कर सकते, अपने आपमें अपने स्वरूपका ग्रहण नहीं कर सकते इस कारण अचेतन हैं। यहाँ यह शंका न करना चाहिए कि बुद्धि तो देखो, अपना ग्रहण नहीं करती और फिर है चेतनका गुण, ये शंकायें न करना चाहिए कि बुद्धि अपना ग्रहण करती है, बुद्धि परपदार्थों को भी जानती है और अपने आपको भी जानती है। बुद्धि कहो, ज्ञान कहो, ये सब अनर्थान्तर हैं। आत्माके निकटका ज्ञान हो उसे लोग ज्ञान शब्दसे कहते हैं और बाहरी पदार्थोंमें सुख दुःख भोगने वाला ज्ञान हो उसे लोग बुद्धि शब्दसे कहते हैं। है परिणति दोनों ही आत्माकी। तो यों ये पुण्य पाप अचेतन हैं, इस कारण आत्माके गुण नहीं हैं तो ये पुण्य पाप १००-५० मील तक फैले हैं और स्त्री, सम्पदा आदिक खोजकर लाते हैं, उतनी दूर तक भाग्य गुण रहा और गुण रहनेसे आत्मा गुणी हुआ, यों आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करना युक्त नहीं है।

पुण्य पाप कर्मके पौद्गलिकत्व होनेसे चेतनगुणत्वका अभाव—धर्म और अधर्म, जिनका दूसरा नाम है पुण्य और पाप जो कि दोनों ही कर्म होनेके कारण एक कर्म नामसे कहे जायेंगे वे कर्म पौद्गलिक हैं, आत्माके गुण नहीं हैं। अतएव यह कहना कि आत्मा सर्वव्यापक है, क्योंकि जैसे देवदत्तके अन्य देशमें रहने वाले गुणके द्वारा वैभव सम्पदा स्त्री आदिक ये सब आकर्षित होकर देवदत्तके पास आ जाते हैं। तो देखो ! अदृष्ट रहा ना, उतनी दूर। सो वहाँ उसका आत्मा भी है। इस तरह आत्माको व्यापक सिद्ध करना युक्त नहीं है। कर्म पौद्गलिक हैं, क्योंकि यह आत्माके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वभावमें बाधा डालता है। आत्माके स्वभावका बाधक आत्माकी जातिसे विलक्षण कोई उपाधि होनी चाहिए। आत्माके ही समान किसी चेतनके द्वारा आत्माके स्वभाव में बाधा नही आ सकती। तो कर्म अचेतन है, उस हीका नाम है पुण्य पाप अथवा धर्म अधर्म। तो जब वे देवदत्तके गुण हो नही हैं तो यह अनुमान बनाना कि देवदत्त की अङ्गना आदिके अंग देवदत्तके गुणसे आकृष्ट होते हैं अयुक्त बात है।

कार्यदेशमें कारणके रहनेका अनियम होनेसे अदृष्टके व्यापकत्वकी असिद्धि—अथवा मान लो कि धर्म अधर्म देवदत्तके गुण हैं। जिस गुणके द्वारा अन्य देशमें रहने वाले पदार्थ देवदत्तके पास खिचते चले आते हैं, ऐसा जो मानते हैं उसमें इतना अंश मान भी लो कि पुण्य पाप देवदत्तके गुण हैं, लेकिन देवदत्तके पुण्य पाप दूसरे नगरके वैभव स्त्री आदिकके पास ठहरते हों, रहते हों तभी उनका समागम बने, यह बात सिद्ध नहीं है। यह नियम नहीं है कि जितने भी कारण हों वे कार्यके स्थान में रहकर ही कार्यकी उत्पत्तिमें लगें। कितने ही कारण ऐसे होते हैं कि कार्यके स्थान में नही हैं और कार्यकी उत्पत्तिमें उनका व्यापार है। जैसे मंत्रवादी सर्पविष दूर करनेका मंत्र पढ़ता है तो मंत्रवादी मंत्रचिन्तन आदि सब कुछ अपने आपके आत्मामें कर रहा है। जिसको विष चढ़ा है ऐसे पुरुषमें वह कुछ नही कर रहा लेकिन वहाँ विष दूर हो जाता है। अथवा कुछ सिद्ध अंजन होते हैं तो साधककी आँखमें जैसा अंजन लगा देनेपर जिसको वह चाहता है ऐसा पुरुष अथवा अन्य वैभव आदिक खिचे चले आते हैं। इसी तरह सिद्धतिलक, सिद्धमंत्र हुआ करते हैं, जो हैं साधकके पास, कार्यदेशमें नही हैं, लेकिन वे सब कार्य आकर्षित हो जाते हैं। अथवा जैसे अयसकान्त चुम्बक होता है वह लोहेकी जगहपर नही है, लोहेसे दूर है, पर लोहेको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। तो यह नियम तो न रहा कि कार्यकी जगहमें कार्य हो तब ही उत्पत्ति होती है। तो इसी प्रकार पुण्य पाप देवदत्तके गुण मान भी लिए जायें, पर उससे यह सिद्ध नही किया जा सकता कि देवदत्तका पुण्यपाप, गुण अदृष्ट कार्यदेशके निकट हैं जहाँसे वस्तु आती है, क्योंकि अनेकों कारण ऐसे हैं कि वे कार्यकी जगह नही हैं और कार्यकी निष्पत्तिमें कारण बन जाते हैं। इसी प्रकार जीवका अदृष्ट पुण्य पाप कार्यकी जगह नही है, अपने आपके आत्मामें है और वहीं ही रहकर वे अनेक समागम लाभके कारण बन रहे हैं।

शंकाकारके उपकारकत्व हेतुमें कार्यत्व विशेषणकी निरर्थकता—शंकाकारने आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करनेके लिए अनुमान बनाया था कि देवदत्तकी सम्पदा स्त्री आदिक देवदत्तके गुणपूर्वक है। क्योंकि कार्य होनेपर वे वैभव सम्पदा देवदत्तके उपकारक हैं अर्थात् ये वैभव स्त्री आदि कार्य हैं और देवदत्तके उपकारक हैं, इस अनुमानमें जो हेतुका विशेषण दिया है 'कार्य होकर' देवदत्तके उपकारक होनेसे इसमें "कार्यत्व" यह विशेषण देनेकी क्या जरूरत थी ? क्या कोई वैभव आदिक कार्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देवदत्तमें भाग्य बिना भी हो जाते हैं ? यदि देवदत्तके भाग्य बिना कोई देवदत्तका काम बन जाय, ऐसी स्थिति आ सकती होती तब तो कार्यत्व विशेषण देना सार्थक था। क्योंकि विशेषण दिया जाता है अन्य व्यवच्छेदके लिए जैसे नील कमल। कमल नीले भी होते हैं, सफेद भी होते हैं और लाल भी होते हैं इस कारण नील यह विशेषण देने की जरूरत है। अब जैसे कोई कहे काला कोयला, तो कोयलामें काला विशेषण देने की जरूरत तो नही, क्योंकि कोयले सभी काले होते हैं, विशेषण दिया जाता है अन्य व्यवच्छेदके लिए। जैसे एक ही नामके दो पुरुष हों जिनेश्वरदास तो अब कौनसे जिनेश्वर दास। दूसरेका व्यवच्छेद करना और एकको ग्रहण करना, तब उसमें कहा जायगा कि डालडा वाले या आदर्श वाले। विशेषण जो भी दिया जाता है वह अन्य व्यवच्छेद के लिए है, किन्तु जब जगतमें कोई सा भी ऐसा कार्य नही है जो भाग्य बिना हो जाय, और भाग्य बिना उपकारक हो जाय तब केवल उपकारकत्वात इतना ही हेतु देना था, इससे वह काम बनता, फिर "कार्यत्व होकर" यों तुम्हारा विशेषण देना व्यर्थ है।

उपकारकत्व हेतुके कार्यत्व विशेषणकी सार्थकता सिद्ध करनेका विफल प्रयास—यदि कहो कि विशेषण देना सार्थक यों है कि समय और ईश्वर ये दो भी तो देवदत्तके उपकारक हैं। कहते हैं ना, कि जब समय आयगा तब काम बनेगा। तो काम बननेका समय भी तो उपकारक है, अथवा जब ईश्वरकी मर्जी होगी तब काम बनेगा लोग यों भी तो कहते हैं, तो ईश्वर भी तो उपकारक हुआ, लेकिन समय और ईश्वर ये उपकारक तो हैं पर कार्य नही हैं। देवदत्तके भग्यके कार्य नही हैं इसलिए "कार्यत्व" यह विशेषण दिया है। कार्य होनेपर जो देवदत्तका उपकारक हो सो ही देवदत्तके गुणपूर्वक अर्थात् भाग्यपूर्वक कहा जायगा। ऐसा कहनेपर काल और ईश्वर ये दो बच जाते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि तुम्हारी बात मान भी ली जाय कि "काल देवदत्तका उपकारक है, समय आयगा तो देवदत्तका काम बनेगा, ईश्वरकी कृपा होगी तो देवदत्तका काम बनेगा। और, ईश्वर, काल देवदत्तके उपकारक तो हो गए, पर देवदत्तके गुणपुर्वक नही है देवदत्तके भाग्यपूर्वक नही हैं। तो यही दोष आ गया कि अनेक ऐसे भी होते हैं कि देवदत्तके भाग्य पूर्वक तो नही और देवदत्तका उपकार करने वाले होते हैं। जैसे कोई यह हेतु दे कि कहीं भी कोई सर्वज्ञ नही है क्योंकि वक्ता होने से। जो जो बोलते हैं वे वे सर्वज्ञ नही हैं तो यह हेतु क्यों दूषित है कि वक्ताका सर्वज्ञ अभावके प्रति नियामकत्व नही है वक्ता सर्वज्ञ भी हो सके, वक्ता असर्वज्ञ भी हो सके तो इसी प्रकार उपकारकदेवदत्तके भाग्य पूर्वक भी हो सकते और उपकारक देवदत्तके भाग्यपूर्वक न हों ऐसे भी हो सकते।

नित्य द्रव्यमें उपकारकत्वकी असंगतता—प्रथम तो यही सिद्ध करना मुश्किल है कि काल देवदत्तका उपकार करता है अथवा ईश्वर देवदत्तका या किसीका भी उपकार करता है। यह सिद्ध क्यों न होगा कि काल माना है शंकाकारने नित्य।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक । इसी प्रकार ईश्वरको भी माना है शंकाकारने एक और नित्य । तो जो नित्य होगा वह किसीका उपकारक नही बन सकता, क्योंकि यदि कोई नित्य पदार्थ किसीका उपकारक बने तो यही तो कहना होगा कि इस उपकारमे पहिले वह पदार्थ अनुपकारक है । तो देखो ! अब इस पदार्थमें अनुपकारकत्ता और उपकारकत्ता ये दो अवस्थायें हुई कि नही, और अवस्थाओंके होनेके मायने है अनित्य हो गया । अनित्य कहते किसे हैं कि जिसमें अवस्थायें बदलती रहें । तो काल ईश्वरमे देखो कि ये इस अनुपकारक अवस्थाका परित्याग करके अब देवदत्तकी उपकारकत्व अवस्थामें आगा है तो नित्य कहाँ रहा ? इस कारण ईश्वर काल, नित्य द्रव्यको कालका उपकारक नही कह सकते । यहाँ व्यावहारिक समस्या यह सुलझाई जा रही है कि इस जीवको जो वैभव सम्पदा आदिक प्राप्त होती है वह किस प्रकार प्राप्त होती है ? क्यों यहाँ भेद पड़ा है कि कोई श्रीमान है, कोई दरिद्र है ? उस समस्याको शंकाकार अदृष्टपूर्वक सुलझा रहा है और उस अदृष्टको बहुत दूर तक फैला हुआ मान रहा है ताकि वह भाग्य जिस किसी चीजको खीच खींचकर इस देवदत्तके पास हाजिर करता रहे । यों अदृष्टको विशेषवादी व्यापक मानता है और अदृष्ट गुणको व्यापक मानकर फिर उसके आश्रयभूत आत्माको व्यापक सिद्ध करना चाहता है लेकिन कारणको यह आवश्यक नहीं है कि वह कार्यकी जगहपर रहे, तब ही काम बन सकता है ।

शंकाकारके उपकारकत्व हेतुमें कार्यत्व अव्यापिता – और, भी देखिये ! जंगलमें किसी जगह नेवला साँप रह रहे हैं तो नेवले और साँपका तो परस्पर विरोध है, बैर है । वहाँ कदाचित नेवलेके शरीरका प्रध्वंस हो जाय, नेवला मर जाय तो नेवलेके शरीरका जो प्रध्वंसाभाव हुआ वह सर्पका उपकारक हुआ ना । नेवला गुजर गया तो अब सर्प सुखसे रहता है, सुखसे घूमता है, तब नेवलेके शरीरका अभाव हो जाना सर्पके गुणपूर्वक हुआ ना, सर्पके भाग्यसे हुआ ना ? सर्पके पुण्यका उदय आया कि उसका बैरी जो नेवला है उसके शरीरका प्रध्वंस हो गया लेकिन अभाव कभी कार्य नही कहलाता । शंकाकारके सिद्धान्तमें अभाव दो अर्थ हुआ करते हैं अभाव है इसका, मायने अन्य कुछ है, यह भी अभावका अर्थ है और कुछ भी होना यह भी अभावका अर्थ है । स्याद्वाद दर्शनमें तो अभावका अर्थ माना गया है अन्य कुछ हो, किन्तु विशेष वादमें, शंकाकारके सिद्धान्तमें अभावका अर्थ है कुछ न होना, तुच्छस्वभावरूप, तो जो तुच्छ अभाव है, असत् होना, कुछ न होना, वह तो कार्य नही बन सकता । तो जब तुच्छाभावमें कार्यत्व सम्भव नही है तब इस प्रसंगमें सविशेषण हेतु न रहा, अर्थात् "कार्यत्वे सति उपकारकत्वात्" यह हेतु भागासिद्ध हो गया । नेवलेके शरीरका प्रध्वंस होना साँपके भाग्यपूर्वक है, क्योंकि कार्य होकर वह सांपका उपकारक बन गया । प्रध्वंस, नेवलेके शरीरका प्रध्वंस सर्पका उपकारक तो बना किन्तु यहाँ कार्य भी है यह बात नही सिद्ध होती क्योंकि तुच्छ स्वभावरूप अभाव कार्य नही हुआ करता । तब यह हेतु एक जगह तो लगा, एक जगह न लगा । किसी दृष्टान्तमें हेतु तो लग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया और किसी जगह हेतु अधूरा ही रह गया, तब यह भागासिद्ध नामका दोष हेतुमें आया। तुच्छाभाव कार्य नही होता, इसपर विशेष विवेचन पहिले भी कर दिया है, जबकि परोक्ष प्रमाणके भेदोंमें एक अभाव प्रमाण भी किसी शंकाकारने रखा था। तब यह घटना सिद्ध न होगी कि नेवलेके शरीरमें प्रध्वंसाभाव सर्पके भाग्यपूर्वक हुआ। यदि कहोकि नेवलेके शरीरमें प्रध्वंसाभाव अतदगुणपूर्वक है, उसमें भाग्यकी कोई बात नही है, बिना भाग्यके ही हो गया। तो लो, अब एक जगह एक घटना ऐसी भी मिल गई कि बिना भाग्यके भी काम हो जाता है, तब फिर सभी जगह देवदत्तकी स्त्री सम्पदा आदिकी घटनामें भी देवदत्तके अतद्गुण पुर्वक मानलो अर्थात् वह भी भाग्य पूर्वक नही है फिर भी देवदत्तका उपकारक बन रहा है ऐसा वहाँ क्यों नही मान लेते ? जैसे कि नेवलेके शरीरका प्रध्वंसाभाव सर्पके भाग्यपूर्वक नही होता है फिर भी शरीरका प्रध्वंस सर्पका उपकारक तो बन ही रहा है।

अदृष्टका निमित्तत्व—जब तीर्थंकर प्रभुका जन्म होता है तब स्वर्गमें घंटा बजता है और व्यन्तरोंके स्थानपर सिंहनाद होता है, इन्द्रके आसन कम्पित हो जाते है। उतनी दूर तक जहाँ कि असंख्याते कोशोंका अन्तर है वहाँ तीर्थंकरका भाग्य जा जाकर ठोकर मार रहा है व्यवहारमें अचानक लोग कह तो यह बैठेंगे कि देखो ! तीर्थंकरके भाग्यने कहाँ कहाँ ठोकर लगाया कि सिंहनाद हो गया, घंटानाद हो गया। लेकिन यह बात गलत है कि तीर्थंकरके पुण्यके परमाणु दौड़ दौड़कर जगह–जगह ठोकर लगाते हों, अथवा कहीं से कुछ खींचकर लाते हों यह बात युक्त नही है तीर्थंकर का अदृष्ट पुण्य तीर्थंकरके आत्मप्रदेशोंमें रहकर ही दूर दूरकी बड़ी बड़ी व्यवस्थाओंका कारण बन रहा है। कारणको यह आवश्यक नहीं है कि वह कार्यके प्रदेशमें जाकर कार्यको करे। सिद्ध अंजन, तिलक, मन्त्र, अयस्कान्त आदि कारण कहाँ कार्यदेशमें रहते हैं ?

सपक्ष साध्यविकलत्व होनेसे आत्मव्यापकत्व साधनमें सदोषताकी मीमांसा– शंकाकारने आत्माको व्यापक सिद्ध करनेके लिए जो यह अनुमान बनाया था कि देवदत्तकी स्त्री सम्पदा आदिक देवदत्तके भाग्यपूर्वक हैं कार्य होकर देवदत्तका उपकारक होनेसे और वह अदृष्ट आत्माके आश्रय हैं। अतएव आत्मा व्यापक है। इसमें दृष्टान्त दिया ग्रास आदिकका। अर्थात् जैसे भोजन देवदत्तके प्रयत्न पूर्वक है, देवदत्तने हाथसे ग्रास उठाया और खींचकरके मुहमें रख लिया तो दृष्टान्तमें शंकाकार ने यह बताया कि देखो ! हाथका जो प्रयत्न है वह देवदत्तका गुण है ना। वैशेषिक सिद्धान्तमें २४ गुण माने हैं, उनमें एक प्रयत्न भी गुण है तो देवदत्तके प्रयत्न पूर्व गुण पूर्वक ग्रास मुखमें आया, इसी प्रकार भाग्य भी गुण माना गया है उन २४ गुणोंमें, तो जैसे हाथके प्रयत्नने ग्रासको खींचकर मुहमें रख दिया तो इसी तरह देवदत्तके भाग्यने भी पूरमें रहने वाली चीजोंका खींचकर देवदत्तके पास हाजिर कर दिया। तो देखिये !

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस प्रसंगमें जो ग्रासका दृष्टान्त दिया है वह साध्यविकल्प है। अर्थात् देवदत्तके गुण पूर्वक नही है। ग्रासका मुखमें पहुचना यह देवदत्तके गुण पूर्वक नही है। कैसे? अच्छा बतलावो जो ग्रास खिचकर मुखमें पहुचा और उसे मानते हो गुणपूर्वक तो वह गुण क्या है? क्या पुण्य पाप आदिक है या प्रयत्न है? यदि कहो कि वह गुण पुण्य पाप है तो यह साध्यसम हेतु हो गया। जैसे कि साध्य असिद्ध है, इसी प्रकार यहाँ हेतु भी असिद्ध हो रहा है। यदि कहो कि प्रयत्नपूर्वक है, और दृष्टान्तमें शंकाकाका मुख्यभाव था एक यह कि ग्रास जो आकृष्ट हुआ है वह देवदत्तके प्रयत्नपूर्वक हुआ है, तो वह प्रयत्न कहलाता क्या है। क्या आत्मामें परिस्पंद होना। आत्मामें प्रयत्न होना आदिक या हस्तपाद आदिक अवयवोंमें क्रिया होना। प्रयत्नके मायने क्या है? क्रिया होना। जैसे—हाथसे ग्रास उठाया, मुखमें दिया तो हुआ क्या? क्रिया हुई। क्रियाका नाम है प्रयत्न। और, उसे तुम कह रहे हो गुण, तो इसका अर्थ यह हुआ कि चलनात्मक क्रियाको तुम गुण बता रहे हो और यदि चलनात्मक क्रियाका नाम गुण रख दिया जाय तो चलनेका ही नाम गुण बता दो। गमन कर रहा है कोई। क्या कर रहा है? गुणकर रहा है, फिर क्रिया क्या रही? और, जब क्रिया कुछ न रही तो यह कहना कि द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य विशेष, समवाय ये ६ जातिके पदार्थ हैं यह संख्या गलत हो गई अब तो क्रियाकी बात ही कट गई। क्रिया कुछ न रही। क्रियाकी वार्ता करना भी बेकार है, इस कारण फिर यह कहना भी अयुक्त है कि द्रव्यका लक्षण है क्रियावत्त्व। जिसमें क्रिया पायी जाय उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्यका लक्षण भी यह माना है वैशेषिक सिद्धान्तने कि जो क्रियाका आश्रयभूत हो उसे द्रव्य कहते हैं। अब क्रिया तो कुछ रही नही, जितनी भी क्रियायें हैं, चलना, फिरना, गोल गोल फिरना, ऊँचे नीचे आना जाना, आदिक ये सब क्रियायें गुण कहलाने लगी तो फिर द्रव्यकी संख्याका विघात होता है और फिर द्रव्यका लक्षण भी खतम हो गया। जब क्रिया कुछ न रही तो क्रियावानको द्रव्य कहते हैं, इस प्रकारका लक्षण बनाना भी अयुक्त हो गया। इस कारण यह बात सिद्ध नही हो सकती कि आत्मा इस कारणसे व्यापक है कि दूरकी चीजको इस आत्माके निकट देवदत्त आदिकके निकट भुगे जानेके लिए आना पड़ता है। जहां तक आत्मा है वहाँ तक भाग्य फैला है और वहाँसे वस्तुवें आती हैं।

देहप्रमाणात्माश्रय अदृष्टकी कारणरूपता होनेसे अदृष्ट हेतुसे आत्माके सर्वव्यापकत्वकी असिद्धि— सत्य तो यह है कि भाग्यमें, अदृष्टमें ऐसा निमित्तपना है कि भाग्यका उदय होते ही स्वयं इष्ट पदार्थोंका समागम मिलता है। पापका उदय होते ही इष्ट वियोग अनिष्ट समागम प्राप्त होता है। साथ ही कुछ ऐसा भी है कि इष्ट अनिष्ट बाहर कहाँ ढूंढ़ना? सब जगह पञ्चेन्द्रियके विषय मौजूद हैं। जहाँ ही कल्पना हुई और इसके साथ कर्मका उदय हुआ जिससे इन्द्रिय आदिककी समर्थता बनती है उस कालमें पदार्थका संयोग तो है ही। यह उनमें साता रूप परिणाम कर लेता है और फिर अदृष्टका सम्बन्ध अधिकतर इस आत्माके भावोंके साथ है, किसीके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पास धन कम है लेकिन साताका उदय अधिक है, सन्तोष है, चिन्ता रहित है, और किसीके पास धन अधिक है तो वही असाताका कारण बन जाता है। धनके कारण चोर डाकू आदिक उसका आघात भी कर डालते हैं। अदृष्ट है और वह भी कार्यमें कारण है लेकिन अपने ही स्थानपर रहता हुआ अदृष्ट अनेक कार्योंका कारण बनता है। यों आत्मा देह प्रमाण है और देह प्रमाण इस आत्माके सर्व प्रदेशोंमें धर्म अधर्मका सद्भाव है अर्थात् पुण्यकर्म और पापकर्मका सद्भाव है। उस पुण्य और पापके उदयके निमित्तसे इष्ट समागम अनिष्ट समागम, इष्ट वियोग अनिष्ट वियोग ये सब हो रहे हैं। कहीं कर्म कारण कार्यदेशमें व्यापक हो तभी यह व्यवस्था बने यह आवश्यक नहीं है। तब सिद्ध हुआ कि आत्मा न परमाणुकी तरह अणुपरिमाण वाला है और न आकाशकी तरह सर्वव्यापक है किन्तु जब जिस देहमें रहता है तब उस देह प्रमाण है, और जब देहसे मुक्त हो जाता है तो जिस आकारमें रहता हुआ वह मुक्त होता है, मुक्त होनेपर फैलनेका, सिकुड़नेका कोई कारण न रहनेसे उस ही प्रमाण रहता है, इस तरह आत्मा अणु प्रमाण और आकाश प्रमाण नहीं, किन्तु आवान्तर परिमाण वाला है। विशेष प्रमाण तो इसका नहीं है कि सबको स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे देह प्रमाण स्वमें ही स्वका, सुख दुखका, संवेदनका, सामर्थ्यका अनुभव होता है। यह ज्ञानकी स्वच्छता का परिणाम है कि सभी पदार्थ अतीत-नागत पर्याय सर्व तत्त्व निरुपाधि केवल ज्ञान में ज्ञात हो जाते हैं। उस ही स्थितिमें सदाके लिये सकल संकट समाप्त हो जाते हैं। इस पावन आत्मरमणके लिये कर्तव्य है कि हम देहपरिमाण आत्मामें देहका भी भान छोड़कर अपना सहज स्वरूप विषयक ज्ञान सम्पुष्ट करें हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम।

अदृष्ट स्वाश्रया संयुक्त आश्रयान्तरमें क्रियात्वका विवेचन—शंकाकार ने जो यह कहा है कि अदृष्ट स्वाश्रयासयुक्त आश्रयान्तरमें क्रिया करता है क्योंकि एक द्रव्य वाला होनेपर क्रियाका हेतुभूत गुण स्वरूप होनेसे प्रयत्नकी तरह। जैसे कि प्रयत्न अपने आश्रयसे संयुक्त आश्रयान्तरमें क्रिया करता है क्योंकि प्रयत्न एक द्रव्यका है और वह क्रियाका हेतुभूत गुण स्वरूप है। जैसे हाथसे ग्रास उठाया, खाया तो हाथका प्रयत्न अपने आश्रयभूत जो शरीर उससे संयुक्त ग्रासमें क्रियाको करता है अर्थात् हाथ का प्रयत्न हाथसे अलग न होकर ग्रासके साथ सम्बन्ध होता है और उसमें क्रिया करता है ऐसे ही अदृष्ट अपने आश्रयसे याने आत्मासे संयुक्त है और आश्रयान्तर अर्थात् प्राप्य स्त्री संपदाके देशमें फैला हुआ है बहुत दूर तक और वह अदृष्ट आत्माके आश्रय है और वह अन्य द्वीपमें रहने वाले पदार्थोंमें कर्मको कर देता है क्योंकि अदृष्ट भी एक द्रव्य वाला है, एक द्रव्यका गुण है और क्रियाका हेतुभूत गुण है, उसका काम ही क्रिया करना है। जैसे कि हाथके प्रयत्नका काम दूसरे पदार्थको आकर्षित करके उठा लेना है इसी प्रकार अदृष्टका भी काम अन्य द्वीपमें रहने वाले पदार्थान्तरका आकर्षण करना है। इस अनुमानमें जो हेतु दिया है उसमें क्रियाहेतुत्व असिद्ध नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। अर्थात् अदृष्ट क्रियाका कारणभूत है। जैसे कि अग्निका ऊपर ज्वलन होना अर्थात् अग्निकी ज्वालाका उठना, वायुका तिरछा बहना, अणु और मनका शरीरकी उत्पत्तिके प्रदेशकी ओर गमन करना ये सब बातें देवदत्तके विशेष गुणके द्वारा करायी गई हैं, क्योंकि क्रिया होनेपर देवदत्तके उपकारक होनेसे। जैसे कि हस्त आदिकका परिस्पंद देवदत्तके विशेष गुणके द्वारा कराया गया है और उस परिस्पंदसे देवदत्तका उपकार हुआ है, जो कुछ भी हाथने किया उस क्रियासे देवदत्तको लाभ पहुँचा है इस कारण क्रिया हेतुत्व प्रयत्नमें है वहाँ असिद्ध नहीं है, इसी प्रकार अदृष्टमें भी एक द्रव्यपना है और क्रियाहेतुत्व एवं गुणत्व है। अदृष्टमें एक द्रव्यत्व है यह बात असिद्ध नहीं है, क्यों कि अदृष्ट एक द्रव्यवान है विशेषगुण होनेसे शब्दकी तरह। जैसे शब्द विशेष गुण है तो वह एक द्रव्य वाला है अर्थात् शब्दका आश्रयभूत द्रव्य है आकाश। इसी प्रकार अदृष्ट भी विशेष गुण है तो उसका आश्रयभूत भी कोई विशेष द्रव्य होता है, वह है आत्मा। तो एक द्रव्यत्व भी असिद्ध नहीं है। अब इस हेतुमें यदि इतना ही कहते कि एक द्रव्यवान होकर गुण होनेसे अथवा एक द्रव्यका गुण होनेसे तो इतना कहनेपर रूप आदिकके साथ व्यभिचार दोष आता है। वह किस तरह कि देखो! रूप आदिक एक द्रव्यका गुण तो है, पुद्गल रूप, एक द्रव्यका गुण है रूपादिक, लेकिन वे आश्रयान्तरमें क्रिया नहीं करते हैं। तो इस दोषकी निवृत्तिके लिए ही प्रकृत हेतुमें क्रिया हेतु गुणत्व यह विशेषण दिया गया है। रूपादिक यद्यपि एक द्रव्यके गुण हैं लेकिन रूपादिक क्रियाके हेतुभूत गुण नहीं हैं। रूपसे कहीं क्रिया नहीं चल बैठती है। अब उस हेतुमें केवल इतना ही कहते कि "क्रिया हेतु गुणत्व" मायने क्रियाका हेतुभूत गुणवानका पाया जायगा तो वह समवाय संयुक्त आश्रयान्तरमें क्रिया करने लगता है। तो इतना मात्र कहनेपर हस्त और मूसल आदिकके संयोगसे व्यभिचार दोष आता है याने हस्त और मूसलका संयोग हुआ और वह स्तम्भ आदिककी क्रियामें कारण भी बन गया, लेकिन अपने आश्रयसे असंयुक्त स्तम्भ कादिकके पीड़नेमें कारण बन गया। जैसे किसी पुरुषने मूसल उठाकर घट फोड़ दिया तो घटकी हनन क्रियामें कारण तो बना लेकिन वह हस्त मूसलका संयोग हस्त मूसलमें ही तो रहा। जिसका हनन किया गया उसमें तो संयोग न रहा। तो इस अनेकान्तकी निवृत्तिके लिए इसमें विशेषण दिया है एक द्रव्यत्वे सति अर्थात् एक द्रव्यवान होकर फिर क्रियाका हेतुभूत होतो वह स्वाश्रय संयुक्त पदार्थान्तरमें क्रिया करता है। अब केवल इतना ही हेतु कहते कि एक द्रव्यत्व होनेपर क्रिया हेतु होनेसे, तो इतना कहनेपर फिर चुम्बकके साथ अनेकान्त आता है। देखो? चुम्बक एक द्रव्य है, और, चुम्बकका जो स्पर्श है वह क्रियाका हेतु भी है लेकिन वह अपने आश्रयसे असंयुक्त लोह आदिकमें क्रिया करता है तो अपने आश्रयका असंयुक्त लोह आदिककी क्रियाका हेतुभूत चुम्बक पदार्थसे अनेकान्त दोष आता। उस दोषको दूर करनेके लिए हेतुमें गुणत्व शब्द दिया है। चूंकि वह अयस्कान्त गुण रूप नहीं है अतएव वहाँ हेतु नहीं घटित होता। इस तरह शंकाकार यहाँ पुष्ट कर रहा है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अदृष्ट अपने आश्रयसे संयुक्त आश्रयान्तरमें क्रियाको करता है।

आत्माकी सर्वगतता और अदृष्टकी कार्यकारिताके सम्बन्धमें शंकाकार द्वारा प्रस्तुत पक्षका संक्षिप्त स्पष्टीकरण—यहाँ शंकाकारका अभिप्राय यह है कि आत्मा एक सर्वव्यापक है। उस एक आत्माके कुछ प्रदेश हमारे शरीरमें हैं कुछ प्रदेश दूसरेके शरीरमें हैं, और शरीरोंके बीच जो खाली अन्तराल है उसमें भी उस ही एक आत्माके कुछ प्रदेश हैं। तो जब आत्मा सर्वत्र एक व्यापक है तो आत्माके आश्रय रहने वाला भाग्य भी सर्वत्र व्यापक है, अब देवदत्तके प्रदेश अलग हैं और जहाँसे कोई चीज आकर देवदत्तको मिलेगी पुण्यके उदयसे उस जगहके आत्म प्रदेश दूसरे हैं, आत्मा एक है। तो देवदत्तका भाग्यका सम्बन्ध देवदत्तके शरीरके आत्म प्रदेशमें है और जहाँ से चीज आयगी उस जगहकी जो आत्मा है उससे भी संयुक्त है। तो जैसे हाथका प्रयत्न जो ग्रासको उठाकर मुखमें रखता है तो उस प्रयत्नका संयोग हाथमें भी है या कहिये देवदत्तमें है और उस प्रयत्नका संयोग ग्रासमें भी है तब वह प्रयत्न ग्रासको मुखमें रख देता है इसी प्रकार जो अदृष्ट, जो भाग्य, जिस भाग्यका सम्बन्ध उस चीजसे है, वैभव सम्पदा स्त्री आदिक सो उस भाग्यका संयोग देवदत्त शरीरस्थ आत्म प्रदेशमें है और उस भाग्यका सम्बन्ध आकृष्यमाण वैभवदेशस्थ आत्मप्रदेशमें भी है, इस कारण वह चीज देवदत्तके पास आती है। ऐसा होता क्यों है कि वह अदृष्ट, भाग्य एक आत्म द्रव्यका है और वह अदृष्ट निष्क्रिय गुणोंकी भाँति नहीं है, किन्तु क्रियाका हेतु रूप गुण है। कई गुण होते हैं क्रियाके अहेतु और कई गुण होते हैं क्रियाके कारण। यह सब वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार कहा जा रहा है, जैसे हाथमें जो रूप है वह गुण तो क्रिया का हेतुभूत नहीं। रूप क्या क्रिया कर सकता है ? और हाथमें जो प्रयत्न नामका गुण है वह क्रियाका कारण बनता है। तो भाग्य नामका जो गुण है वह क्रिया हेतुभूत है इस कारण बाहरकी चीजें आत्मासे मिल जाती हैं, इससे सिद्ध है कि आत्मा सर्वव्यापक है। तभी तो अदृष्ट जो आत्माके आश्रय है वह चीजोंको खोज खोजकर ला देता है।

अदृष्टके आत्मगुणत्वकी असिद्धि होनेसे शंकाकारके अभीष्टकी असिद्धि—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारकी बात सुनते ही तुरन्त बड़ी सुहावनी लगती है. सो जब तक उसपर विचार न किया जाय तब तक ही वह बात सुहावनी, भली लगती है। विचार करोगे तो जितनी बात कही है उसकी एक एक बातका निराकरण हो जायगा। पहिले तो यह निराकृत होता है कि अदृष्ट आत्माका गुण है, भाग्य आत्माका गुण है ही नहीं। यहाँ शंकाकारने हेतुको पुष्ट बनानेके लिए तीन बातें रखी हैं एक द्रव्यकी चीज है भाग्य अर्थात् जो आत्मा सर्वत्र फैला हुआ है उस ही आत्माके कुछ प्रदेश देवदत्तके शरीरमें हैं पर उसका जो अदृष्ट है वह तो आत्मा का कहलायगा। तो वह अदृष्ट एक आत्मद्रव्यका है। दूसरी बात कही है यह कि अदृष्ट गुण है, तीसरी बात कही है यह कि वह अदृष्ट गुण क्रियाका हेतु है। इन तीनों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में विशेष्य तो है "गुण" अर्थात् मुख्य हेतु यह है "गुण होनेसे," और, गुणके विशेषण हैं दो। क्रियाका हेतुभूत है और एक द्रव्यके आश्रय है। तो इसमें विशेष्य तो गुण कहलाया मुख्य, सो यही सिद्ध नही हो रहा तो अन्यकी तो बात ही क्या कहें। फिर विशेषणपर चलो।

अदृष्ट और आत्मामें संयोता असिद्ध होनेके कारण अदृष्टके एक द्रव्यत्वकी असिद्धि होनेसे शंकाकारके अभीष्टकी असिद्धि—एक द्रव्यका है वह अदृष्ट यह भी सिद्ध नही होता। वह भाग्य एक आत्माके आश्रय है, एक आत्माका है वह अदृष्ट यह कैसे सिद्ध करोगे? क्या अदृष्टका एक आत्मामें संयोग है इस कारणसे यह कहोगे कि भाग्य एक द्रव्यमें रह रहा है अथवा भाग्यका इस एक आत्मामें समवाय सम्बन्ध है इस कारण कहेंगे कि भाग्य एक द्रव्यमें है, अथवा किसी अन्य कारणसे कहोगे? यहाँ संयोग और समवायका कुछ अर्थ समझ लीजिये। संयोग तो कहलाता है वह सम्बन्ध जो पहिले न्यारे-न्यारे हों, फिर भी न्यारे-न्यारे हो सकेंगे। ऐसे सम्बंध को कहते हैं संयोग। जैसे बेन्चसे इस पुस्तकका संयोग है. पहिले न था यह संयोग और शास्त्र पढ़नेके बाद उठा लिया जायगा तो बेन्चसे इस पुस्तकका संयोग न रहा। तो स्वतंत्र भिन्न-भिन्न दो द्रव्योंमें जो कोई सम्बन्ध बनता है उसका नाम है संयोग सम्बंध और समवाय सम्बन्ध उसे कहते हैं कि उसका सम्बन्ध तो जब रहा, पर यह हालत कभी नही हुई कि उसका सम्बन्ध न था। यह हालत कभी न होगी कि उसका सम्बंध न रहेगा। जैसे आत्मामें ज्ञानका समवाय सम्बन्ध है, आत्मा कभी ज्ञान रहित न था द्रव्यमें आत्मा कभी ज्ञान रहित न होगा। कदाचित वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार आत्मा ज्ञानरहित भविष्यमें तो हो जायगा पर पहिले कभी न था ज्ञानरहित। ऐसे घनिष्ठ सम्बन्धको कहते हैं समवाय। तो यह बतलावो कि उस भाग्यका तो एक आत्मा में सम्बन्ध बन गया है तो क्या संयोग सम्बन्ध है या उसमें समवाय सम्बन्ध है। संयोग सम्बन्ध तो कह नही सकते, क्योंकि संयोग भी स्वयं एक गुण माना गया है वैशेषिक सिद्धान्तमें। जैसे भाग्य भी आत्माका गुण है ऐसे ही संयोग भी एक गुण है। तो संयोग जब गुणरूप है तो वह गुणमें कैसे रहे सयोगका तो यह लक्षण है कि जो द्रव्य द्रव्योंमें सम्बन्ध रहा करे। जैसे बेन्च द्रव्य है, पुस्तक द्रव्य है तो इसका संयोग बन जाता मगर भाग्य तो द्रव्य नही। आत्मा द्रव्य है, अदृष्ट, भाग्य गुण माना गया है वैशेषिक सिद्धान्तमें तो द्रव्य और गुणके सम्बन्धका नाम संयोग बताया ही नही। द्रव्य द्रव्यके सम्बन्धका संयोग कहेंगे। यदि कहो कि होने दो संयोग अदृष्टका और आत्मा का, तो इसके मायने है कि अदृष्ट गुणवाला हो गया संयोग वाला हो गया, द्रव्य जितमें होते हैं वे गुण वाले हुआ करते हैं. द्रव्याश्रयः निर्गुणः गुणः। जो लक्षण स्याद्वादमें गुणका किया गया है विशेषवादी वे भी मानते हैं कि द्रव्य गुणके आश्रय रहता है तथा गुणमें और गुण नही रहा करते, क्योंकि जिसमें गुण रहते हैं उसका नाम है द्रव्य। यदि गुणमें गुण रहे तो उस गुणका नाम हो जायगा द्रव्य। तो जब अदृष्टका

http://sahjanandvarnishastra.org/

और आत्माका संयोग सम्बन्ध हो गया तो आत्मा भी द्रव्य कहलायेगा और भाग्य भी द्रव्य कहलायेगा। भाग्यका ही नाम अदृष्ट है। तब यह कहना कि अदृष्ट क्रियाका हेतुभूत गुण है अब गुण ही न रहा तो अनुमान गलत हो गया।

अदृष्ट और आत्मामें समवाय असिद्ध होनेके कारण शंकाकारकी अभिष्ट सिद्धिका अभाव—यदि कहो कि भाग्यका उस एक आत्माके साथ समवाय सम्बध है तो पहिले समवायको ही तो सिद्ध कर लो। समवाय नामका कोई सम्बंध भा हुआ करता है क्या? इसका निषेध आगे बड़े विस्तारसे किया जायगा। प्रसंगमें यह बात मान लो कि सम्बंध तो दो तरहके होते हैं एक संयोग सम्बंध दूसरा तादात्म्य सम्बंध। तो तादात्म्य कहते हैं उसे कि उस ही रूप वह चीज है। केवल समझने के लिये भेद किया है। जैसे आत्माका ज्ञान। आत्माका ज्ञान किसी सम्बंसे आत्मामें रहे, सा बात नहीं, किन्तु ज्ञानमय ही आत्मा है, वहाँ सम्बंध कुछ नहीं है। वही एक है तद्रूप। तादात्म्य कहो या तद्रूप कहो एक ही अर्थ है। अब उस तद्रूप और तादात्म्य के समझनेके लिए उसका भेद लोग कर देते हैं कि देखो जिसमें ज्ञान रहे उसे कहते हैं आत्मा, पर ऐसा तो नहीं है—आत्मा अलग हो, ज्ञान अलग हो उसका सम्बंध बने, तब तो स्पष्ट रूपसे यह कहो कि जिसमें ज्ञान पाया जाय वह है आत्मा। जिसमें घी भरा है वह है घीका डिब्बा, यह तो बात बन जायगी। घी अलग है, डिब्बा अलग है, पर आत्मा और ज्ञानको यह सम्बंध कहना मिथ्या है क्योंकि आत्मा और ज्ञान स्वभाव न्यारा है नहीं, और न्यारा करके समझा सकेंगे, इसके अलावा उपाय कुछ समझानेका है नहीं। तो सम्बंध तो एक ही है, संयोग। कभी होता कभी विघटता है। समवाय नामका कोई सम्बंध नहीं है। संयोग, समवाय दो के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बंध माना नहीं गया। तो उस अदृष्टका एक द्रव्यमें सम्बन्ध बन कैसे गया? तो यह भी तब गलत हो गया कि अदृष्ट एक द्रव्य वाला है अर्थात् एक ही आत्मामें रह रहा है। जो आत्मा सर्वव्यापक है, देवदत्तमें जो आत्मप्रदेश है उसमें वही एक आत्मा है और बाहर जहाँ वैभव सम्पदा रखे हैं उस जगह भी उस ही आत्माके प्रदेश हैं। अदृष्टका सम्बंध उस एक आत्मामें है ये सारी बातें गलत हो जायेंगी।

अदृष्टके क्रियाहेतुत्वके निराकरणमें तीन विकल्प—अब जरा क्रिया हेतुत्वपर भी विचार करिये। शंकाकार यह मानता है कि अदृष्ट क्रियाका हेतुभूत याने भाग्य बाहरके पदार्थोंकी क्रियाका कारण है अदृष्ट संपदाको खींच खींचकर ला देता है भाग्यवान आत्म प्रदेशके पास, यह भी बात गलत है, क्योंकि यहाँ यह एक विचार करो कि जिस भाग्यको द्वीपान्तरमें अन्य द्वीपमें रहने वाली चीजको खींचकर ला देने की बात कहते हो यह अदृष्ट क्या देवदत्तके शरीरमें रहने वाले, आत्म प्रदेशमें रहता हुआ अदृष्ट अन्य द्वीपमें रहने वाले वैभवको देवदत्तके प्रति भेजता है या अन्य द्वीपोंमें रहने वाला जो अदृष्ट है, भाग्य है वह वहाँकी चीजको देवदत्तके पास भेजता है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

(प्रकरण बहुत सरल है और एक जन साधारण की बातचीत जैसा सरल है कठिन नहीं है। यहाँ यह पूछा जा रहा है कि जो लोग ऐसा कहते हैं कि भाग्य अन्य द्वीपकी चीजोंको देवदत्तके पास हाजिर कर देता है तो यह बतलाओ कि देवदत्तके शरीरकी जगह कहनेवाले आत्मप्रदेशमें ही भाग्य रह रहा है और वह भाग्य अन्य द्वीपोंकी चीजोंको खींच खींच कर देवदत्तके पास लाता है, क्या यह मतलब है या जैसे किसी सेठका मुनीम बम्बई कलकत्ता जैसे शहरोंमें बैठा है और वह वहाँकी चीज यहाँके मालिकके पास भेज दिया करता है क्या इस तरह देवदत्तके भाग्य सभी जगह पड़े हुए हैं और वे वहाँकी चीजोंको भेजते रहते हैं देवदत्तके पास ? तीसरा विकल्प यह है कि भाग्य सभी जगह मौजूद है इस कारणसे भाग्य चीजोंको देवदत्तके पास भेजता रहता है ? इन तीन विकल्पोंसे तुम कौनसा विकल्प मानते हो ?

देवदत्तशरीरस्थ अदृष्ट द्वारा द्वीपान्तरस्थ वैभवके उत्सर्पणकी असिद्धि

पहिली बात तो माननेके काबिल नहीं है कि देवदत्तके शरीरके आत्मप्रदेशोंमें ही रहता हुआ भाग्य अन्य द्वीपोंकी चीजोंको खींचकर ला देता है. यह बात यों न मानी जा सकेगी कि अदृष्ट तो पड़ा हुआ है देवदत्तके शरीरमें सो द्वीपान्तरमें ४–५ हजार मील दूर पर, इतनी दूर पर रहने वाले अन्य द्वीपोंमें जो वैभव सम्पदा आदिक पड़े हुए हैं उसके साथ यहाँ देवदत्तके शरीरमें रहने वाले भाग्यका सम्बंध ही नहीं है। फिर वह उन चीजोंकी क्रियाका कारण कैसे बन सकता है ? यहाँ शंकाकार यह कहता है कि इस अदृष्टका उन अन्य द्वीपोंमें रहने वाले पदार्थोंके साथ सम्बन्ध यों बनता है कि इस अदृष्टका भाग्यका देवदत्तके शरीरस्थ आत्मप्रदेशमें संयोग है और चूंकि आत्मा है वह एक ही सर्वव्यापक इस एकताके नातेसे अदृष्टका उन अन्य द्वीपोंमें भी सम्बन्ध बन रहा है क्योंकि वह अदृष्ट उस ही एक आत्माका आश्रय करके कर रहा है। तो उस भाग्य से संयुक्त सारे आकृष्यमाण द्रव्य हैं जो खिचकर आने योग्य हैं, उन द्रव्योंकी जगह भी भाग्यका सम्बन्ध बन जाता है। इसपर समाधान करते हैं कि यदि ऐसा हो जाता कि देवदत्तके शरीरमें रहने वाले आत्मप्रदेशमें संयुक्त भाग्य द्वीपान्तरके पदार्थोंको खींचकर लाता है तो जब यह भाग्य ५ हजार मील दूरकी चीजोंको खींचकर ला रहा है तो रास्तेके और पदार्थ भी उसके साथ खिचकर आ जाने चाहियें। वही एक पदार्थ क्यों खिचकर आता ? फिर तो जो खिचकर न आने योग्य हैं वे वैभव भी आ जाने चाहियें और जो आनेके योग्य है वह भी आ जाना चाहिए। यदि देवदत्तका भाग्य ४-५ हजार मील दूरके पदार्थको खींचकर लाता है तो रास्तेमें पड़े हुए समस्त वैभवोंको भी साथ में लपेट लाना चाहिये, पर ऐसा तो नहीं होता। कोई एक वस्तु आती है। सारा जमाना कहाँ खिचकर आता है ? अब शंकाकार कहता है कि जिस अदृष्टके द्वारा जो चीज उत्पन्न की जाती है उस भाग्यके द्वारा वही चीज खिंचकर आती है, सारी चीजें नहीं। तो उत्तर देते हैं कि फिर तो देवदत्तके शरीरको रचने वाले परमाणुवोंका उस अदृष्टके द्वारा उत्पन्न होना नहीं बन सकता, क्योंकि देवदत्तके शरीरको रचने वाले

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमाणुवोंका उस अदृष्टके द्वारा उत्पन्न होना नही बन सकता, क्योंकि देवदत्तके शरीर को रचने वाले परमाणु हैं नित्य और जो नित्य चीज होती है वह किसीके द्वारा उत्पन्न नही की जा सकती अन्यथा नित्य क्या रही ? और जब देवदत्तके शरीरको रचने वाले परमाणु भाग्यके द्वारा रचे नही गए और फिर उन परमाणुवोंका आकर्षण अदृष्टके द्वारा ही माना जाय तो जो नही रचे गए उन्हें भी भाग्य खींचने लगा । देवदत्तके शरीरके परमाणु रचे नही गए और उन्हें भी भाग्य ही तो खींचकर लाता है । सो भी ठीक और रास्तेमें जो पदार्थ मिलेंगे उन्हें उस भाग्यने रचा नही, फिर भी आजाने चाहियें, क्योंकि अब तो बिना रची हुई चीज भी आने लगीं । जैसे शरीरके परमाणु बिना रचे हैं, भाग्यने नही रचा, लेकिन आने वाला भाग्य ही है तो भाग्यके द्वारा नही रचे गए ५ हजार मीलके भीतरके सारे वैभव भी भाग्यके द्वारा खिचकर आ जाने चाहियें, पर यह बात नही बन सकती कि देवदत्तके शरीरके आत्मप्रदेशमें रहने वाला भाग्य ही दूर-दूरके द्वीपोंमें रहने वाले वैभवोंको खींचकर लाता है ।

द्वीपान्तरस्थ अदृष्टके द्वारा देवदत्तके प्रति वैभवको उत्सर्पण किये जानेकी असिद्धि शंकाकार कहता है—तब फिर हमारी दूसरी बात मान लो ! अर्थात् उन ४–५ हजार मीलकी दूरीपर रहने वाले वैभवोंके पास भाग्य रखा हुआ है और वह भाग्य दूरकी चीजोंको देवदत्तके पास भेजता रहता है, तो इस सम्बन्धमें भी दो बातें पूछी जारही हैं एक तो यह कि जैसे हवा देवदत्तके पास स्वयं भाग रही है और बीचमें जितने भी तृण, हल्की धूल, कचड़ा, हल्के कागज वगैरहको भी तो भेज रही है देवदत्तके पास, तो देवदत्तके समीप उन कण आदिकके सरकानेका कारण बन रही है हवा, क्या अदृष्ट भाग्य देवदत्तके प्रति स्वय भागता है, सरकता है और अन्य पदार्थोंको भी सरका रहा है ? देखो ना ! हवा स्वयं सरककर देवदत्तके पास नही आये तो बीचके तृण भी कैसे आयें ? केवल तृण हो आ जाय देवदत्तके पास और हवा न आये, ऐसा नही होता । हवा भी आ रही है और उसके साथ तृण आदिक भी आ रहे, क्या इस तरहसे ५ हजार मील दूरपर रहनेवाला भाग्य स्वयं सरककर देवदत्त के पास आता हुआ वैभवको साथमें सरकाकर ला रहा, क्या यह बात है अथवा उस दूसरे द्वीपमें रहने वाले द्रव्यसे सयुक्त जो आत्मप्रदेश हैं वहाँ ही रह रहा, ठहर रहा भाग्य और वहीं रहकर उन पदार्थोंको सरका देता है । यहाँ दो बातें पूछी जा रही हैं, एक तो यह कि हवाकी तरह भाग्य स्वय सरकता हुआ आ रहा है और वैभवको सरकाकर ला रहा है, दूसरी बात यह कि वह भाग्य सरककर नही आ रहा है वह तो एक मुनीमकी तरह वहाँ ही बैठा हुआ है । वहाँसे चीजोंको सरकाकर देवदत्तके पास भेजता है, इन दोनों बातोंमें आप कौनसी बात पसंद करते हो ? यदि कहो कि हमारी बात पहिली रख लीजिये अर्थात् वायुकी तरह भाग्य सरकता हुआ चीजको सरकाकर लाता है तो यह बतलावो कि भाग्य क्या स्वयं सरक रहा है ? या किसी अन्य भाग्य के द्वारा सरक रहा है ? जैसे चीजके सरकनेमें भाग्य कारण है तो उस भाग्यके सरकने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में भी क्या वह स्वयं ही कारण है या दूसरा भाग्य उस भाग्यको सरकाता है ? यदि कहो कि नहीं, भाग्य स्वयं सरककर आ रहा है और चीजोंको सरकाकर ला रहा है, तो जब भाग्य स्वयं सरकने ल । तो चीजको ही क्यों नहीं सरकने वाली मान लेते ? कि भाग्यके बिना यह चीज भी स्वयं सरककर दे दत्तके पास आ गई ! फिर तो भाग्यकी कल्पना ही करना छोड़ दो। भाग्यकी कोई बात नहीं है। और फिर इसमें दोष यह भी आता है कि एक नियम बना था कि जो चीज देवदत्तके प्रति सरकती है वह देवदत्तके गुणसे आकृष्ट होकर सरकती है, क्योंकि देवदत्तके प्रति सरक रही है। यह नियम दूषित हो गया। कैसे ? नियम बनाया था यह कि जो चीज सरकती है वह देवदत्तके गुणसे आकृष्ट होकर सरकती है। अब यह देखो ! कि ५ हजार मील दूरपर रहने वाला भाग्य सरककर तो आ रहा है मगर उस भाग्यका सरकना किसी गुण-पूर्वक नहीं हो रहा है, क्योंकि वह स्वय सरककर आ रहा है। सरकने वाली चीज अन्य गुणके द्वारा आकृष्ट होकर सरकती है, यह बात तो न रही ? तुम्हारा भाग्य तो अब दूसरे भाग्यके बिना ही सरककर आ रह । इस कारण यह पहिली बात सिद्ध नहीं होती कि भाग्य वायुकी तरह सरकता हुआ, वं वको भी सरकाकर देवदत्तके पास लाता है।

उत्सर्पण करने वाले द्वीपान्तरवर्ती भाग्यसे वैभवोत्सर्पणके विकल्पकी मीमांसा – प्रकरण यह चल रहा है कि शंकाकार यह मान रहा है कि बहुत दूर द्वीपान्तरोंमें रहने वाला देवदत्तका भाग्य वहाँसे चीजोंको भेजता रहता है। इस सम्बन्धमें अनेक विकल्प उठाकर बहुत कुछ तो निराकरण किया, और इस प्रसङ्गमें यह आपत्ति दी जा रही है कि जैसे हवा खुद सरकती हुई रास्तेके तृण आदिकको सरकाती है, इसी तरह देवदत्तका भाग्य क्या खुद सरकता है ? और सरकता हुआ वह चीजोंको भी ला देता है ? यदि वह भाग्य खुद सरकता है तो इसी बातमें दोष आ गया। शंकाकारने तो यह कहा था कि जो कुछ भी सरकता है, वह गुणपूर्वक सरकता है। जैसे वैभव सरका तो देवदत्तके गुणपूर्वक सरका, देवदत्तके भाग्यसे सरका। अब देवदत्तका भाग्य जो खुद सरका उसे किसने सरकाया ? यहाँ यह आपत्ति आ रही कि जो भाग्य सरकता हुआ चीजको ला देता है उस भाग्यको सरकाने वाली दूसरी क्या चीज है ? तो शंकाकार यहाँ जवाब देरहा है कि जैसे किसीने शब्द बोला और वह ५० गज दूर तक शब्द गया तो वही शब्द नहीं जाता, किन्तु शब्दोंकी तरङ्ग बन जाती है और एक शब्दसे दूसरा शब्द बना, दूसरेसे तीसरा बना, इस तरह शब्दोंकी लहर बन बन करके वहाँ तक पहुँचती है। इसी तरह ५ हजार मील दूरपर रहने वाला भाग्य वही खुद सरककर देवदत्तके पास नहीं जाता, किन्तु वीची तरङ्ग न्यायसे उस भाग्यसे पास वाला सरका, उसने अपने पास वाले भाग्यको सरकाया। इस तरह लहर होते–होते भाग्य देवदत्तके पास आ जाता है। समाधानमें कहते हैं कि इस तरह भी याने नये–नये भाग्यकी उत्पत्ति माननेपर जो दूसरे दूसरे भाग्य हैं उनका निमित्तकारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बतलाओ ? वहां कहना चाहिए कि उनका निमित्तकारण अनन्तरित पूर्व पूर्व भाग्य है जैसे तीसरे भाग्यको सरकानेका निमित्त रण दूसरा भाग्य है। दूसरे भाग्यको सरकानेका निमित्तकारण दूसरा भाग्य है, दूसरे भाग्यको सरकानेका निमित्तकारण पहिला भाग्य है। तो पहिले भाग्यको सरकानेका कारण और उससे पहिले क्या ? तो यों अनवस्था दोष आयगा। यदि कहोगे कि भाग्यकी नवीन नवीन उत्पत्ति होती जाती है, पर उनमें पहिले भाग्य निमित्त नहीं हैं, तो यों शब्दमें भी पहिले शब्द निमित्त न बने। यदि कहो कि पहिला ही भाग्य जो सरका किसी एक दूसरे भाग्यके द्वारा सरका और वह भाग्य सीधा आ गया। वीची तरंग न्यायसे नया-नया भाग्य बन-बनकर नहीं आया। सिर्फ दो भाग्य हम मानते हैं एक तो वह असली भाग्य जो सरककर चीजोंको लाता हुआ देवदत्तके पास आये और एक उस भाग्यको सरकाने वाला दूसरा भाग्य। तो उत्तरमें कहते हैं कि तो यह प्रश्न खड़ा ही रहेगा कि भाग्यको सरकानेवाले भाग्यको किसने सरकाया ? इसलिये अनवस्था दोष वहीका वही बराबर रहता है।

द्वीपान्तरवर्ती भाग्यसे वैभवोत्सर्पणके सिद्धान्तकी मीमांसा – अब अब शंकाकार कहता है कि इसमें सरकने सरकानेकी कोई बात नहीं है। ५ हजार मील दूरपर रहने वाले भाग्यने वहींसे ऐसा प्रयत्न किया कि वहाँसे वैभव, स्त्री, सम्पदा आदिक स्वयं सरकते हुए आ गए। देखो भैया ! शंकाकारका विकल्प आपको ध्यानमें आया ना, जैसे कि बाण चलाने वालेने अपनी जगहमे बाण चलाया तो वह बाण एक मील दूर तक चला गया। प्रयत्न करने वाले पुरुषको यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रयत्न या वह पुरुष बाणके साथ ही सरकता हुआ जाय तब बाण पहुँचे। इसी तरह ४-५ हजार मील दूरपर रहने वाले भाग्यने ऐसी क्रिया की कि वहाँसे स्त्री सम्पदा आदिक स्वयं भगते हुए देवदत्तके पास आ गए। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना संगत नहीं है, क्योंकि दूसरी जगह हो प्रयत्न अर्थात् दूसरी जगहके आत्मप्रदेशमें रहने वाला तो हुआ अदृष्ट, उसका प्रयत्न और उस जगहके प्रयत्नके होनेपर यहाके आत्मगुणोंमें कोई खासियत हो जाय, सो नहीं हो सकता। जैसे शंकाकारका यह दृष्टांत था कि थालीमें रखा हुआ ग्रास मुखमें पहुँच कैसे जाता है ? देवदत्तके हाथके प्रयत्न गुणसे ! तो वहाँ भी मानना पड़ेगा कि ग्रास जहाँ रखा है वहाँ भी आत्मप्रदेश है, सो यहाँ देख लो ! उन आत्मप्रदेशोंमें रहने वाला जो प्रयत्न है वही ग्रासको देवदत्तके मुखमें नहीं रख देता। अगर थालीकी जगह रहने वाला प्रयत्न गुण ही मुखमें ग्रास धरदे तो बीचके और प्रयत्न करनेकी जरूरत न रही। जैसे बाण चलाने वालने अपनी जगहसे बाण छोड़ दिया और वह बाण १ मील दूर चला गया तो उसे बीचमें प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं रही। इसी तरह ग्रासकी जगह रहने वाले आत्मप्रदेशमें प्रयत्न होनेसे ग्रास मुखमें यदि पहुँच जाय तो बीचके जो हाथके प्रयत्न हैं ग्रासकी जगहसे लेकर मुख तक सारे प्रयत्न हुए ना ! एक हाथ दूरसे लेकर मुख तक हाथ क्रम क्रमसे प्रयत्न करता हुआ गया सो यों तब फिर बीचके प्रयत्नोंकी जरूरत न रहनी चाहिए। इससे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह कहना बेकार है कि जहाँसे जो चीज आती है देवदत्तके पास उस जगह आत्मप्रदेश में गुण होते हैं, भाग्य होता है और वह वहाँ ला देता है।

प्रयत्नकी विचित्रताकी शंका और उसका स्वयमुक्त समाधान—अब समझ लीजिये यहाँ दो आपत्तियाँ आयी ना! यह भी नही कह सकते कि हजार मील पर रहने वाला भाग्य वहीं रहेगा. वहींसे ऐसी ठोकर लगाता है सम्पदामें कि सम्पदा खिचकर चली आती है। तथा यह भी नही कह सकते कि भाग्य भी स्वयं सरकता हुआ आता है। और साथमें सम्पदाको ले आता है। जब दोनों बातें शंकाकार सिद्ध न कर सका अलग-अलग तो शंकाकार कहता है कि भाई प्रयत्न नाना प्रकारके हुआ करते हैं। कोई प्रयत्न ऐसा होता है कि बीचके सभी देशकी लगातार जगह छूता हुआ ठिकानेकी जगहपर आता है जैसे ग्रासका मुखमें पहुँचना। देखो ना, ग्रास स्थानसे मुख स्थानतक लगातार पूरी जगहमें प्रयत्न करता हुआ हाथ आता है तब ग्रास मुखमें आता है। और, कोई प्रयत्न ऐसा होता कि लगातार सारी जगहमें गुजरनेकी जरूरत नही। एक ही जगह प्रयत्न हुआ कि चीज खिचती चली गई। जैसे कि वाणके स्थानपर प्रयत्न हुआ और वह सीधा १ मील दूर वेध्य लक्ष्यपर पहुँचा तो इसके समाधानमें कहते हैं कि ऐसी ही विचित्रता तुम भाग्यमें क्यों नहीं मानते? उसमें भी रहो कि वह एक द्रव्य वाला भाग्य है और क्रियाका हेतुभूत गुण है, और अपने आश्रयमें संयुक्त हो अथवा असंयुक्त हो सब क्रियावोंका हेतु होता है। सो लो, अब आत्माको सर्वव्यापक माननेकी जरूरत नही। क्योंकि जैसे एक प्रयत्न तो ऐसा होता कि लगातार सारे देशमें सरकता हुआ गया। उसमें तो शायद सर्वव्यापक जैसी माननेकी बातका जरा स्वप्न देख सकते हो, पर एक प्रयत्न ऐसा होता कि वहींसे चोट लगाकर चीजको फेंक दे तो बीचमें आत्मा माननेकी क्या जरूरत? और, ये दो तरहकी विचित्रतायें क्रियाके हेतुमें देखी भी जाती हैं। जैसे जो नकली चुम्बक है उसपर लोहेके टुकड़ेका स्पर्श करा दिया जाय तब उसको खींचता है, जैसे कई चुम्बक वाली चाकू ऐसी होती हैं कि सूईको दूर से ही खींच लेती हैं और चुम्बक वाली चाकू ऐसी होती हैं कि जो सूईको चाकूका स्पर्श करा देनेपर सूईको अपनी ओर खीचतीं है। तो ये दो तरहके चुम्बक हो गए। जो नकली चुम्बक है वह तो लोहेका स्पर्श करानेपर अपनी ओर खीचता है और जो असली चुम्बक है वह एक हाथ दूरसे ही लोहेको अपनी ओर खींचता है, ऐसे ही आत्माके अदृष्टमें, भाग्यमें भी दो तरहकी बातें मानो। तो यह तो सिद्ध हुआ कि आत्मा शंकाकार की एक निगाहमें शायद व्यापक बनता हो, परंतु वस्तुत: एक निगाहमें व्यापक नही रहता।

गुणवान द्रव्यकी क्रियाहेतुताका निर्णय—यहाँ दृष्टान्त दिया है नकली और असली चुम्बकका। असली चुम्बक तो लोहेको दूरसे ही खींच लेता है और नकली चुम्बक लोहेका स्पर्श करा देनेपर अपनी ओर खींचता है। इस पर शंकाकार कहता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि स्पर्शगुण आकर्षणका कारण नही है किन्तु द्रव्य है आकर्षणका कारण। चुम्बक पिण्ड आकर्षणका कारण है। इसका सबूत यह है कि अगर चुम्बक न हो, द्रव्य न हो तो खाली स्पर्शगुण भला खींच तो दे किसीको। सो चुम्बकका स्पर्शगुण नही खींचता, किन्तु चुम्बक द्रव्य लोहेको खींचता है। शंकाकारके इस कथनपर समाधानमें उलहना देते हैं—तब तो तुमने जो यह कहा है कि वेग क्रियाका कारण है तो वेग तुम्हारा गुण है कि द्रव्य है ? बताओ। वह तो गुण है। तुमने यहाँ स्पर्शगुणको क्रिया हेतु माननेसे इनकार किया तो वेगका क्रिया हेतु न बन सकेगा साथ ही यह भी कहा कि क्रिया संयोगका कारण है। जैसे—दो हाथ अलग—अलग हैं। अब इनका संयोग कैसे बने ? जब इसके हाथोंमें क्रिया हो। तो क्रिया तो द्रव्य नही लेकिन देखो ! वह क्रिया संयोग का कारण बन गया। सो यह न बनेगा फिर क्योंकि तुम मानते हो कि द्रव्य ही क्रिया का कारण होता है। इसी तरह संयोग गुण द्रव्यका भी कारण न होगा। याने जो बिखरे हुए एक—एक परमाणु हैं वे तो कारण द्रव्य हैं और परमाणु मिल करके कार्य द्रव्य बने हैं। तो परमाणु तो कार्य द्रव्य नही। द्रव्य माना है स्कंधको, कार्य द्रव्यको। परमाणुको तो सिर्फ कारणरूप माना है शंकाकारने, तब फिर स्कंधकी उत्पत्ति न होगी। द्रव्य ही यहाँ कारण रहा इस प्रसंगमें मुकाबलेके प्रश्नोत्तर करनेके लिए दो बातें हैं सामने। चुम्बकका स्पर्शगुण लोहेके खींचता है यह नही मानना चाहता है शंकाकार। और, मान रहा है यह कि वेग क्रियाका कारण होता है आदिक। तो यहाँ तो गुणको क्रियाका कारण नही मान रहा और वेग आदिककी जगह गुणको क्रियाका कारण मान रहा। तो विपत्ति देनेके बाद शंकाकार कहता है कि वेग जिसमें होता है उस द्रव्यको यदि तुम क्रियाका कारण मान लोगे, वेगको कारण न मानोगे तो वेग रहित द्रव्य क्रिया तो करदे, जिसमें वेग नही हो रहा, ऐसा खाली द्रव्य क्रियाका कारण तो बन जाय ? नही बनता। इससे सिद्ध है कि क्रियाका कारण तो वेग है। समाधान में कहते हैं तो यही बात यहाँ घटा लो कि स्पर्श रहित चुम्बक लोहेको तो खींच दे ? नही खींच सकता। तो जैसे वेग गुणको क्रियाका कारण यहाँ मानते हो ऐसे ही चुम्बककोमें स्पर्शगुणको क्रियाका कारण मान लो। यदि कहोगे कि चुम्बकमें तो यह बात नजर आती तो चलो ठीक है। अब यहाँ एक समन्वयपर आ जावो कि न केवल स्पर्श गुण, न केवल वेग गुण क्रियाका कारण है और न केवल गुणरहित द्रव्य क्रियाका कारण है किन्तु स्पर्शवान चुम्बक जैसे क्रियाका हेतु है ऐसे ही सर्वत्र मानना कि गुण सहित द्रव्य क्रियाका कारण है। तो जब ऐसा मान लिया तो वह हेतु दूषित हो गया कि "एक द्रव्यवाला होकर क्रियाका हेतुभूत गुण होनेसे"। यहाँ निष्कर्ष यह है कि आत्मा आकाशवत् सर्वव्यापक नही हैं किन्तु देह प्रमाण है। देह प्रमाण रहकर ही यह आत्मा अपने आपमें सम्बन्धित भाग्य द्वारा अपने आप इष्ट समागम अनिष्ट वियोग आदिक समस्त अभीष्टको पाता रहता है।

आत्माको नित्य एक निरंश सर्वगत मान डालनेकी उपजकी हेतुभूत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बुद्धिकी संभवता—भैया यह पता नही कि सीधी सादी बात न मानकर जो बात अनुभवमें नही आती. प्रत्यक्षसे नही आती, ऐसी बातोंकी कल्पना करनेको दार्शनिकों को क्या जरूरत रही थी ? समझमें आ रहा—जितना देह है उतना आत्मा है। सबका अनुभव अपने आपमें अलग अलग है. इतना प्रत्यक्ष सिद्ध आत्माका समाधान है और उसे न स्वीकार करके आत्मा एक सर्वव्यापक है, भाग्य भी उतनी दूर फैला है, और और भी सारी व्यवस्थायें बनाना इसकी क्या आवश्यकता थी ? यह एक सामने प्रश्न है। अब सोचो इस प्रश्नके कारण क्या हम सभी इन दार्शनिकोंको बिल्कुल मूढ़ कह देंगे ? उनमें कुछ ज्ञान न था, वे कुछ दिमागसे सोचते न थे ? नही, नहीं. उनके मित्र बनकर विचार करिये सोचते थे वे, उनमें ज्ञान था, कुछ तथ्य उन्होंने परखा था, मगर उस परखमें थोड़ी सी चूक हो जानेके कारण इतनी विरुद्ध वार्ताको मुख्य करके उप-स्थित कर दिया। तथ्य क्या था ? एक चित्रण करो ऐसा कि एकान्त बन उपवनमें किसी जगह बहुतसे विद्वान साधु बैठे हुए थे। उनमें कोई मुख्य आचार्य आत्माके शुद्ध स्वरूपका वर्णन कर रहे थे। आत्माका सहज स्वरूप क्या है ? नारक मनुष्य देव, पशु पक्षी आदिक होना यह आत्माका स्वरूप नही है। क्रोध, मान, माया, लोभ विषय कषाय परिणाम होना आत्माका स्वरूप नही है। विकल्प वितर्क विचार होना आत्मा का स्वरूप नही है। विशुद्ध प्रतिभास, केवल चैतन्य स्वरूप, और उस चैतन्य स्वरूपका बोध होगा चैतन्यके ही स्वरूपको जाननेसे। गुण पर्यायका पिण्ड आत्मा है, उसमें ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं, उन सबकी प्रतिसमय परिणतियाँ होती हैं. इस तर्कके वर्णनसे भी तो आत्माके चैतन्यस्वरूपका स्पष्ट परिचय नही होता। अतएव पिण्ड दृष्टिसे आत्मत्त्व को देखनेके उपायको ढीला कर दो। वह तो विशेषतायें जाननेका उपाय है। आत्मा इतने आकारमें रहता है, इस तरह क्षेत्रकी दृष्टिसे आत्माका परिचय करने चलोगे तो आत्माके सहज स्वरूपका परिचय न बन सकेगा। इस कारण आत्माके आकारको देख करके आत्माका अनुभव करनेका उपाय ढीला कर दो। वह तो जानकारीका अंग है और परम्परया सहयोगी है। आत्मामें जो परिणतियाँ होती हैं विषय कषाय आदिककी उन परिणतियोंके द्वारा भी निरख करके हम आत्माके शुद्ध चित्स्वरूपका परिचय न कर पावेंगे इस लिए काल दृष्टिसे भी आत्माके परखनेका उपाय ढीला करो। आत्मामें कितने गुण हैं, कितनी शक्तियाँ है, ऐसी गुणोंकी दृष्टि करके भी चूँकि वह भेदपरक है तो आत्माके अभेद शुद्ध चित्स्वरूपका अनुभव न कर पावोगे। इसलिए भेद भावकी दृष्टिसे भी ढीला करो। एक अभेद भाव चैतन्य स्वरूपकी दृष्टिको मुख्य करके निरखने चलो तो आत्माके विशुद्ध चैतन्य स्वरूपका अनुभवकर लोगे। इस तरहके बन उपवनमें व्याख्यान हो रहे हों और वहाँ सुनने वाले कोई विद्वान संयासी इसमें लाभ जानकर इसी तत्वपर आग्रह करके रह गये कि आत्मा तो बस यही है। यदि हम परिणतिकी दृष्टिसे आत्माको जानते हैं तो उसका अनुभव ही नही होता। अतः आत्मा नित्य है। यदि कुछ उसे आकारकी दृष्टिसे निरखने चलते हैं उसकी सीमा रखकर, तो उस शुद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूपका अनुभव ही नही होता। अतः आत्मा व्यापक एक है। हम यदि आत्माकी सीमा करके न्यारे न्यारे आत्मा अनेक संख्यावोंमें निरखते हैं तो उस शुद्ध स्वरूपका अनुभव ही नही जगता अतः आत्मा एक है। श्रम किया, ईमानदारीसे चले और वे इस दर्शनतक पहुँचे कि आत्मा एक है, नित्य है, सर्वव्यापक है। परख करते हुएमें भूल कहाँ हुई ? स्याद्वादको छोड़ दिया। तो यहाँ शंकाकार आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करने के लिए अपनी युक्तियाँ रख रहा है और समाधानमें उन युक्तियोंमें दोष देकर सर्वव्यापकताको असिद्धि की जा रही है।

सर्वत्र भाग्य माननेपर भाग्यमें सर्व वैभवोंकी क्रियाकी हेतुता आनेका प्रसंग—शंकाकार कहता है कि वैभव, सम्पदा आदिकके आकर्षणका हेतु अदृष्ट याने भाग्य है। इस सम्बन्धमें जो यह पूछा गया था कि क्या वह अदृष्ट देवदत्तमें शरीरमें रहता हुआ क्रियाका हेतु है अथवा द्वीपान्तरमें सम्पदाके पास रहता हुआ अदृष्ट सम्पदा की क्रियाका हेतु है, अथवा यहाँ वहाँ बीच सब जगह रहता हुआ भाग्य वैभव सम्पदा के ग्रहणका हेतु है। सो इन तीन विकल्पोंमें से दो विकल्प तो सफल न हो सके अब हमारा तीसरा विकल्प मान लीजिये कि देवदत्तके देहमें और द्वीपान्तरवर्ती वैभव सम्पदाके निकट तथा बीचमें सर्वत्र भाग्य रहता है और वह वैभव सम्पदा आदिकके ग्रहणका हेतु है। समाधानमें कहते हैं कि ऐसा माननेपर तो वह भाग्य समस्त पदार्थों की क्रियाका कारण बन जायगा। जब भाग्य विश्वमें सर्वत्र उपस्थित है तो जितनी सम्पदा है विश्वमें समस्त सम्पदाकी क्रियाका हेतु बन जायगा। यह भाग्य यदि कहो कि जो अदृष्ट जिस द्रव्यको उत्पन्न करता है वह अदृष्ट उस ही द्रव्यमें कार्यको करता है तो ऐसा माननेपर भी यह दोष बराबर रहता है कि शरीरका आरम्भ करने वाले, शरीरको रचने वाले परमाणुवोंमें फिर क्रिया न होगी, क्योंकि शरीरको रचने वाले परमाणु तो नित्य माने गए हैं, कारण द्रव्य नित्य माने गए हैं। तब उन्हें अदृष्टने तो उत्पन्न किया नही, और जिसको भाग्य उत्पन्न करे उसमें ही क्रिया बननेकी बात कर रहे हो तब उन परमाणुवोंमें क्रिया नहीं हो सकती। फिर शरीरके परमाणु कैसे बने ?

शंकाकारके हेतुमें कालात्ययापदिष्ट दोष—और भी सुनो ! भाग्यका आश्रभूत है आत्मा अर्थात् आत्माके आधारमें भाग्यको माना हैं और आत्मा है हर्ष विषादात्मक। सो वह आत्मा द्वीपान्तरमें रहने वाले वैभवोंसे वियुक्त होता हुआ ही अपने आत्माको स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे जानता है, अर्थात् प्रत्येक आत्मा ऐसा ही अपने आपको समझ रहे हैं कि द्वीपान्तरमें रहने वाले वैभव सम्पदा आदिकसे रहित अपने आपमें मैं हूं। सो प्रत्यक्षसे यह आत्मा अपने देहमें ही द्वीपान्तर वर्ती वैभवसे रहित ही जान रहा है फिर क्रियाका प्रत्यक्षसे विरोध है। तो प्रत्यक्ष बाधित क्रिया बतानेके बाद फिर तुमने यह अनुमान दिया तो यह कालात्ययापदिष्ट हेतु हो गया।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखो ! द्वीपान्तरवर्ती वैभवोंसे रहित आत्माकी प्रतीति हो रही है, तिसपर भी अपना आत्मा और द्वीपान्तरमें रहने वाला वैभव उन सबके साथ संयोग मानते हो तो हम यह भी कह बैठेंगे कि यहाँके कपड़ोंका भी मेरु पर्वत आदिकसे संयोग है। देखो है तो ऐसा नही, किन्तु जब अटपट ही सब कुछ जाना जा रहा है तो हम कह सकते कि यह जो कपड़ा है यह इतना ही बड़ा नही है, यह मेरु पर्वत तक फैला हुआ है। और कदाचित कोई मानले कि चलो यह भी बात सही तो समें सांख्य दर्शन आ जायगा। यह सिद्धान्त मानता है कि सब कुछ सब जगह मौजूद है। सब चीजें व्यापक हैं। यदि कहो कि पटादिका मेरु आदिकसे संयोग माननेमें प्रमाणसे बाधा आती है तो प्रमाणसे बाधा आनेकी बात दोनों जगह समान है तुम्हारे कथनमें भी और हमारे कहे हुए प्रसंग में भी। इससे सब जगह भाग्य रहता और वह द्रव्यकी क्रियाका कारण है, यह बात नही बन सकती।

आत्माको सावयव व अनित्य माने बिना आत्माके साथ पुण्य पापके संयोगकी असिद्धि— और फिर देखिये! पुण्यपापका व द्रव्यान्तरके संयोगका एक ही तो आत्मा आश्रय कहा गया है, जो द्वीपान्तरसे वैभव आनेको है वहाँ भी वही एक आत्मा है। देवदत्तके शरीरमें भी वही एक आत्मा है यों कह रहे हो सो देखो आपके मतमें तो आत्मा निरंश है निरवयव है। सो अब पुण्य पापका जो आत्मामें संयोग हो रहा वह सर्वात्मपना हो गया। तो जब समस्त आत्मामें पुण्य पापका संयोग या प्रवेश मान लिया तो उसका नाम संयोग कहाँ रहा? संयोग होता है पदार्थके कुछ अवयवों में, सर्वावयवोंमें संयोग सम्बन्ध नही हुआ करता। जैसे बेन्चपर पुस्तक रखी तो बेन्च जितनी मोटी है, उसके भीतरके जितने प्रदेश हैं सबमें तो नही पहुँची, तो निरंश आत्मा के साथ धर्म अधर्मका संयोग नही बन सकता। यदि कहो कि वह संयोग पुण्य पापसे आलिङ्गित आत्माके स्वरूपको छोड़कर अन्य स्वरूपमें रहता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि घट पट आदिककी तरह आत्मा सावयव बन गया। जैसे घट पटमें कह सकते हैं कि अभी इस जगह संयोग है, घटका पटसे इस जगह संयोग नही है तो यों दो तरह के स्वरूप बननेसे सावयवता सिद्ध हो जाती है और फिर आत्मा अनित्य भी हो गया। एक पुण्य पापसे आलिंगित स्वरूपको छोड़कर अन्य स्वरूपके साथ जब धर्म अधर्ममें संयोग किया तब आत्मा नित्य भी हो गया। इस तरह आपका वह हेतु सिद्ध नही होता कि भाग्य एक द्रव्य वाला होनेपर क्रियाका हेतुभूत गुण है इस कारण भाग्य वैभवको खींचकर देवदत्तके पास उपस्थित करता है। और ऐसा सिद्ध करके आत्माको सर्वव्यापक मानना चाहते हो सो भी सिद्ध नही होता।

अदृष्टमें क्रियाहेतुत्व न बननेके कारण पश्वादिकी देवदत्तगुणाकृष्टताका भी निराकरण—जब अदृष्ट क्रियाका हेतुभूत गुण सिद्ध न हो सका द्रव्य ही क्रियाका हेतु सिद्ध हो सकता है तब शंकाकारका यह कहना भी निराकृत हो जाता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देवदत्तके प्रति सरकने वाले, आने वाले पशु आदिक देवदत्तके गुणसे आकृष्ट हुए हैं क्योंकि वे पशु आदिक देवदत्तके प्रति उत्सर्पण वाले हैं जैसे ग्रास आदिक, यह सब कैसे निराकृत हो जाता है सो सुनिये ! जैसे कि देवदत्तके प्रयत्न नामक विशेष गुणके द्वारा आकृष्ट हुआ ग्रास देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होता है इसी प्रकार नेत्राञ्जन आदिकके द्वारा जो कि द्रव्यविशेष है उस द्रव्य विशेषके द्वारा आकृष्ट हुए स्त्री आदिक देवदत्त के प्रति आते हुए पाये जाते हैं। तब यहाँ उत्सर्पणके कारणमें दो बातें आयी—एक तो यह कि कुछ पदार्थ नेत्राञ्जन आदिक द्रव्य विशेषके द्वारा आकृष्ट हुए। जैसे कि उक्त विवरणमें बताया है कि आहार ग्रास तो प्रयत्न नामक विशेष गुणसे आकृष्ट हुए और स्त्री आदिक नेत्राञ्जन आदिक द्रव्य विशेषके द्वारा आकृष्ट हुए। तब यहाँ यह संदेह हो जाता है कि पशु आदिक क्या प्रयत्नकी तरह वाले किसी गुणके द्वारा आकृष्ट हुए हैं ? कोई भी पुरुष ऐसा कह सकता है कि विवादग्रस्त पशु आदिक जो देवदत्तके प्रति आये हैं वे प्रयत्न जैसे गुणके द्वारा आकृष्ट होकर आये हैं या कभी यह भी कह सकता है कि अंजन आदिककी तरह किसी द्रव्यविशेषके द्वारा आकृष्ट होकर आये हैं क्योंकि आये हैं ना ! तो यहाँ यह सन्देह किया जा सकता है, और फिर इससे अनुमानका बल नष्ट हो जाता है।

प्रयत्न अञ्जन आदि पूर्वक ग्रास पश्वादिके उत्सर्पणमें दिये गये हेतुमें दोषाधायक प्रश्नोत्तर—शङ्काकार कहता है कि अञ्जन आदिककी तरह द्रव्यविशेष का अभाव होनेपर भी प्रयत्न आदिकसे ग्रास आदिकका आकर्षण देखा जाता है, तब वहां अनेकान्तिक दोष हो गया। उत्तरमें कहते हैं तो प्रयत्न आदिकी तरह किसी गुण का अभाव होनेपर भी अंजन आदिकसे स्त्री आदिकका आकर्षण देखा गया है तो आप के हेतुमें भी अनेकान्तिक दोष आ जायगा। यदि कहो कि यहाँ अनुमान किए गए प्रकृतमें जिसमें कि प्रत्ययकी तरह गुणके द्वारा आकर्षण बताया गया है उसका ही हेतु बनाया है कि उत्सर्पणका कारण होनेसे। सो इस हेतुमें अनेकान्तिक दोष नहीं आता। तब अन्य जगहका जहाँ कि अंजन आदिककी तरहके गुणोंका अनुमान किया जा रहा है उसमें भी स्त्री आदिकके आकर्षणमें जो हेतु दिया है उसमें भी अनेकान्तिक दोष न होगा। शङ्काकार कहता है कि ग्रास आदिकके आकर्षणमें तो प्रयत्नका ही सामर्थ्य है, इस कारण वहाँ द्रव्यविशेषके द्वारा आकर्षणकी बात कहना निष्फल है। समाधानमें यह भी कहा जा सकता है कि स्त्री आदिकके आकर्षणके प्रसङ्गमें भी अंजन आदिकका ही सामर्थ्य है, इस कारण अन्य गुणके द्वारा आकर्षणकी बात कहना विफल क्यों न हो जायगा ? अब शङ्काकार कहता है कि अंजन आदिकको भी स्त्री आदिकके आकर्षणका कारण माननेपर सभी पुरुषोंके अंजन आदिक लगा देनेपर स्त्री आदिकका आकर्षण हो जाना चाहिए, किन्तु अंजन आदिक समानतया लगाये गए हैं दो पुरुषोंमें या अनेक पुरुषोंमें, फिर भी उन दोनोंके या सबके अर्थात् अंजन लगाने वाले सभी पुरुषोंके पास स्त्री आदिकका आकर्षण नहीं होता। इससे सिद्ध है कि अंजन आदिककी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अविशेषता होनेपर भी जिसके न होनेसे आकर्षण न हो वह कारण है। अंजन आदिक मात्र कारण नही है अर्थात् अदृष्ट भाग्य मुख्य कारण सिद्ध होता है। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी बात आपकी खण्डित हो जाती है, क्योंकि प्रयत्नके कारणमें भी वही उत्तर समान हो जायगा। हम भी यह कह देंगे कि समस्त प्रयत्न करने वाले पुरुषोंके प्रति आहार मुखमें नही आ जाया करता, क्योंकि कभी किसीके ग्रासका अपहार भी देखा जाता है। कोई ग्रास उठाकर खा रहा हो और दूसरा आदमी या बन्दर उसे छीन ले जाय तो प्रयत्नमें भी नियमित कारणता न रही कि प्रयत्न करनेसे ग्रास मुखमें आ ही जायगा। तब उस ग्रासके भी मुखमें आनेका कोई अन्य कारण मानो ! केवल स्त्री सम्पदा आदिकके आकर्षणमें नेत्रांजन आदिक ही कारण न मानकर जैसे किसी अदृष्टको कारण मानते हो तो ग्रासके आहार करनेके सम्बन्धमें भी मात्र प्रयत्नको ही कारण न मानो, किन्तु अन्य कारणका भी अनुपात करो नहीं तो तुम्हारे प्रकृतमें भी यह बात न बन सकेगी। तब यह कहना निराकृत हो जाता कि देवदत्तके प्रति आये हुए पशु आदिक देवदत्तके गुणसे आकृष्ट हुए हैं।

पशु, स्त्री सम्पदा, ग्रास आदिके आकर्षणोंके कारणपर प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि स्त्री आदिके आकर्षणके प्रति अजन आदिक कारण नहीं होते हैं। समाधान में कह रहे हैं कि यदि स्त्री आदिकके आकर्षणमें अञ्जन आदिक कारण नहीं हैं तब फिर स्त्री सम्पदा आदिक के चाहने वाले पुरुषोंको फिर अञ्जन आदिक ग्रहण करनेका यत्न, उपादान न बन सकेगा, क्योंकि जब अञ्जन आदिक स्त्री सम्पदा आदिक की प्राप्तिके कारण ही नहीं हैं तो फिर अञ्जन आदिकको कौन ग्रहण करेगा, कारण न होनेपर भी यदि अञ्जन आदिकको कोई ग्रहण करने लगे तो जैसे बालू से तैल नहीं निकलता इसीप्रकार अञ्जन आदिक के ग्रहणसे फिर कभी भी स्त्री आदिकका आकर्षण नहीं हो सकता है, क्योंकि जो कारण नहीं है उससे कभी भी कार्य बनता ही नहीं। ऐसा भी नहीं कह सकते कि जिसमें सामर्थ्य देखी जा रही है ऐसे अञ्जन आदिकको तो कारण न मानो और उसके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थमें कारणपनेकी कल्पना करो तब तो अनवस्थासे कभी मुक्ति हो ही नहीं सकती। अर्थात् जो भी कारण मानोगे उसमें भी यह कह बैठेंगे कि अब इस कारण को तो छोड़ दो अब दूसरा कारण मानो फिर बात न बनेगी और कहोगे कि इस कारण को भी छोड़ दो, अन्य कोई कारण मानो तो इस तरह अनवस्था दोष से मुक्ति नहीं हो सकती।

अञ्जनादिको अदृष्टसहकृत कारण माननेपर घटनाओंमें कारणोंका सन्देह—शंकाकार कहता है कि अञ्जन आदिक कारण तो हैं मगर भाग्यकी सहकारिता लेकर अञ्जन आदिक स्त्री सम्पदा आदिकके आकर्षणके कारण है, केवल अञ्जन आदिक ही कारण नही हो सकते। समाधानमें कहते हैं–तब तो इस तरह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहनेसे भाग्यकी तरह अञ्जन आदिके भी कारणपना आ गया। तो जैसे भाग्य कारण है ऐसे ही अञ्जन कारण है और इसी तरह प्रयत्न आदिक भी कारण हैं तब तो यह संदेह हो ही जायगा कि पशु आदिक जो देवदत्तके प्रति आते हैं वे क्या ग्रास आदिककी तरह प्रयत्न सदृश किसी गुणसे आकृष्ट होकर आता है या स्त्री आदिककी तरह अञ्जनादिवत किसी गुणके द्वारा आकृष्ट होकर आता है। अथवा भाग्य संयुक्त अञ्जनादिक के द्वारा या आत्माके ही द्वारा ये पशु आदिक देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होते हैं। जब यह संदेह हो गया तो कारणोंमें अब बल तो न रहा। सब निर्बल कारण रहे। किसी कारणके होनेपर भी कार्य हो ही जाय अब यह विश्वास न रहा।

वैभवोंकी तदगुणाकृष्टता सिद्ध करनेके लिये दिये गये हेतुके दृष्टान्त में साध्यविकलता—और, भी देखिये कि आपके दृष्टान्तमें साध्य विकलता है। शंकाकारका अनुमान है कि पशु आदिक देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होते हैं, वे देवदत्तके गुण के द्वारा आकृष्ट हैं क्योंकि देवदत्तके प्रति ये आ रहे हैं ग्रास आदिककी तरह। तो दृष्टान्त दिया है ग्रासका और साध्य बनाया गया है देवदत्तके गुणसे आकृष्ट होता है। अब यहाँ परिस्पंद करने वाले आत्म प्रदेशको छोड़कर ग्रास आदिकके आकर्षणका कारणभूत प्रयत्न नामका विशेष गुण भी असिद्ध है। जिसको यह अनुमान समझाना चाहते हो वे लोग तो नही मानते हैं कि आत्म प्रदेशको छोड़कर अन्य कोई प्रयत्न विशेष इस ग्रासके आनेके कारण हैं या उनसे आकृष्ट हुए हैं। मूलमें तो आत्म प्रदेशका परिस्पंद ही कारण बन रहा है फिर आत्म प्रदेशके परिस्पंदका निमित्त पाकर शरीरमें वायुका परिस्पंद होता है और वायुके परिस्पंदका निमित्त पाकर जिस प्रकारकी इच्छा की उस प्रकारसे हस्तादिक अवयवोंमें परिस्पंद होता है तो इस तरह दृष्टान्तमें साध्य विकलता आती है. अर्थात् ग्रास आदिक देवदत्तके गुणसे आकृष्ट नही हैं, किन्तु आत्म प्रदेशके परिस्पंदकी परम्परासे ये सब आकृष्ट हुए हैं। यों शंकाकारके द्वारा दिये गए अनुमानमें प्रत्येक अंगकी असिद्धि है. और, इसी कारण ये समस्य पदार्थ देवदत्तके भाग्यसे खिचे हैं यह सिद्ध नही होता। और यह जब सिद्ध नही होता तो आत्मा सर्वव्यापक है यह भी सिद्ध नही हो सकता।

देवदत्त शब्दके वाच्य अर्थकी मीमांसामें पृष्टव्य छह विकल्प—शंकाकार ने यह कहा था कि वैभव सम्पदा पशु आदिक जो देवदत्तके प्रति उत्सर्पित होते हैं, वे देवदत्तके गुणसे आकर्षित होते हैं, क्योंकि उत्सर्पण होनेसे। जिस चीजका भी उत्सर्पण होता है वह गुणसे आकर्षण होता है। जैसे ग्रासका ग्रहण हुआ तो देवदत्तके प्रयत्न गुणसे हुआ। इस सम्बन्धमें केवल इतने अंशपर विचार करिये अभी। देवदत्तके प्रति सरकते हैं ये सब तो वहाँ देवदत्तका अर्थ क्या है? ये सारी सम्पदायें देवदत्तके पास आ रही हैं तो इसमें केवल यह बता दीजिए कि देवदत्तका अर्थ क्या है? वैसे तो देवदत्त एक आदमीका नाम है, पर ये उसके गुणोंसे खिचते हुये आ रहे हैं सब, यह जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा है तो देवदत्तकी जानकारी करना जरूरी हो गया। देवदत्तका अर्थ क्या है जिसके कि गुणसे खिंचे हुए पदार्थ आते हैं ? क्या देवदत्त शब्दके द्वारा वाच्य शरीर है याने शरीरका नाम देवदत्त है क्या ? अथवा आत्माका नाम देवदत्त है ? या आत्मा और शरीरके संयोगका नाम देवदत्त है ? अथवा आत्म संयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है या शरीरमें संयुक्त आत्माका नाम देवदत्त है या शरीरमें संयुक्त आत्म प्रदेशका नाम देवदत्त ? ये छः विकल्प किए गए।

देवदत्त नाम वाच्यताके सम्बन्धमें शंकाकारसे पृष्टव्य उक्त ६ विकल्पों का स्पष्टीकरण —उक्त विकल्पोंका और भी खुलासा जान लो। पहिले विकल्पमें यह पूछा कि देवदत्तका जो शरीर है क्या वह देवदत्त है अथवा जैसे कि आपका जो शरीर है क्या यही आप हैं ? सीधा सा विकल्प है। जो लोगोंको एकदम दिखता है देवदत्तके कहनेपर वह क्या है ? शरीर दूसरे विकल्पमें पूछा गया है कि क्या आत्माका नाम देवदत्त है ? भले ही लोगोंको शरीर दिखे, पर देवदत्त नाम किसका धरा गया ? शरीरमें जो आत्मा रह रहा है क्या उस आत्माका नाम देवदत्त है ? तीसरे विकल्पमें यह पूछा कि न तो शरीरका नाम देवदत्त कहो, और न आत्माका नाम देवदत्त कहो, किन्तु शरीर और आत्माके संयोगका नाम देवदत्त है क्या ? इस तीसरे विकल्पमें आत्माको व शरीरको भी नहीं कहा जा रहा देवदत्त, किन्तु इन दोनोंके संयोगको कहा जा रहा। जैसे मोटे रूपमें किसी किसी प्रसंगमें लगता है ना यह। जैसे—कपूर, पिपरमेन्ट और अजवाइनका सत ये मिल करके एक धारा बन जाते हैं, प्रवाह बन जाते हैं। तो वह जो प्रवाह रूप प्रभाव है, चमत्कार है वह न केवल कपूरका है, न अजवाइन सत् का है न पिपरमेन्टका है तो क्या तीनोंका है ? तीनोंका भी नहीं, एक एकका भी नहीं दोका भी नहीं, उनके संयोगका प्रभाव है। मोटे रूपसे जैसे कहा जाता है ना, असलमें तो वहाँ भी संयोगका प्रभाव नहीं, संयोगमें आये हुए उन तीनोंका ही प्रभाव है लेकिन रूढ़िमें मोटेरूपसे जैसे कि लोग कहते हैं उस हीके अनुसार यह विकल्प चल रहा है कि न तो शरीरका नाम देवदत्त है न आत्माका नाम है किन्तु दोनोंके संयोगका नाम देवदत्त है। चौथे विकल्पमें यह पूछा गया है कि क्या आत्माके संयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है ? इस विकल्पमें मुख्यता किसकी रही ? शरीरकी। और, सहोक्त रहा शरीरका विशेषण। आत्माके संयोगसे विशिष्ट शरीरका नाम देवदत्त है, आत्माका नाम देवदत्त नहीं, उनके संयोगका नाम देवदत्त नहीं, किन्तु आत्माके संयोग से सहित शरीरका नाम देवदत्त है, इसका अन्तर भी निहारते जाइये कि एक विकल्पसे दूसरे विकल्पमें क्या अन्तर है ? जहाँ यह कहा कि आत्मा और शरीरके संयोगका नाम देवदत्त है वहाँ दोनों छूट गए। और, एक संयोग गुणका नाम देवदत्त रखा। और, जहाँ यह कहा कि आत्माके संयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है तो शरीरका नाम देवदत्त रहा। किस शरीरका नाम ? सो उसका वह विशेषण बन गया। पांचवें विकल्पमें पूछते हैं—क्या शरीरके संयोगसे सहित आत्माका नाम देवदत्त है ? यहाँ मुख्यता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसकी की ? आत्माकी। किस आत्माका नाम देवदत्त रखा ? शरीर संयोगसे सहित आत्माका नाम देवदत्त रखा। इसमें भी न आत्माको कहा गया न शरीरको कहा गया न संयोगको कहा गया न आत्म संयोग विशिष्ट शरीरको कहा गया किन्तु शरीर संयोग से सहित आत्माको देवदत्त कहा गया। छठवें विकल्पमें पूछा गया है कि क्या शरीरसे संयुक्त आत्म प्रदेशका नाम देवदत्त है ? यहाँ न शरीरको देवदत्त कह रहे न आत्माको, न शरीर आत्माके संयोग गुणको, न आत्माके संयोग गुणसे सहित शरीरको, न शरीर के संयोग सहित आत्माको। इन सब विकल्पोंमें तो आत्मा जहाँ जहाँ नाम लिया पूरा पूरा आत्मा है। आत्माको मानते हैं वैशेषिक लोग सर्वव्यापक (सर्वगत) सारे विश्वमें फैला हुआ एक आत्मा है। तब देवदत्त किसका नाम रखा है ? वह क्या सारा फैला हुआ आत्मा ही है ? सो तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। एक आत्माके उतनी जगहके प्रदेश जितनेमें कि देवदत्तका शरीर समाया है उस शरीरसे संयुक्त उन आत्म प्रदेशोंका नाम है देवदत्त। ऐसे ६ विकल्पोंमें देवदत्तकी व्याख्या पूछते हैं कि आखिर देवदत्त नाम किसका है जिसके लिए दूर दूरसे वैभव सम्पदा आदि खिचते हुए चले आरहे हैं ?

देवदत्तनाम वाच्यताके सम्बन्धमें शंकाकारके प्रथम विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि शरीरका नाम हम देवदत्त मानते है अब उन ६ विकल्पोंमेंसे क्रमसे एक एक विकल्पको पूछ पूछकर उसका निराकरण किया जा रहा है। यदि शरीरका ही नाम देवदत्त रख दिया तो ये वैभव सम्पदा स्त्री आदिक जो जो कुछ देवदत्तको मिलते हैं सो देवदत्तके गुणसे खिचे आ रहे हैं यहाँ गुणका अर्थ भाग्य लिया है। दृष्टान्तमें प्रयत्न लिया है, अथवा तिलक, अञ्जन, मंत्र तंत्र आदिक लिया। प्रकृत बात को सिद्ध करनेके लिए गुणका अर्थ भाग्य लिया। देवदत्तके भाग्यसे खिचे चले आ रहे है। अब यहाँ देवदत्त मान लिया शरीरको तो सीधा कहो ना कि ते सब शरीरके गुण से खिचे हुए चले आ रहे हैं, वैभव सम्पदा सब कुछ सरकते आ रहे हैं देवदत्तके गुणके कारण, इसका अर्थ अब यह हुआ इस प्रथम विकल्पमें कि शरीरके गुणके कारण खिचे आ रहे हैं। तब देखो कि इतना अनुमान और हेतुवोंके कथनका परिश्रम करके सिद्ध तो करना चाहते थे आत्माके विशेष गुणसे खिचे आते हैं यह, और सिद्ध क्या हो बैठा कि शरीरके गुणसे खिचे आ रहे हैं, तो सारा मामला विरुद्ध हो गया, हेतुने विरुद्ध बात सिद्ध कर दिया। चले तो हेतुसे यह सिद्ध करने कि ये सब वैभव सम्पदा स्त्री आदिक आत्माके गुण विशेषसे खिच जाते हैं और सिद्ध क्या हो बैठा कि शरीरके गुण से खिच आये हैं, तो विरोध हो गया। तुम जो सिद्ध करना चाहते उससे उल्टी बात सिद्ध हो गयी। इससे प्रथम विकल्पकी बात सही नहीं उतरी कि शरीरका नाम देवदत्त है और देवदत्तके गुणसे ये सब खिचे चले आते हैं, और, यह सिद्ध करके फिर आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करना चाहते हैं, वह सब अयुक्त है।

देवदत्तनाम वाच्यताके सम्बन्धमें द्वितीय विकल्पका निराकरण—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि दूसरा विकल्प कहते हो कि आत्माका नाम देवदत्त है शरीरका नाम देवदत्त नहीं, तो अब देखिये कि उस आत्माके गुणसे जो पदार्थ खिंच रहे हैं तो देखो ! आत्मा तो सर्वव्यापक है ना, नित्य है, अर्थात् सारे क्षेत्रमें फैला हुआ है एक आत्मा और तीनों कालोंमें निरन्तर फैला हुआ है. एक आत्मा, तो उन पदार्थोंका, उन पदार्थोंके देशका, उन पदार्थोंके कालका सदा ही आत्मासे सम्बन्ध बना हुआ है। तो जब सदा सम्बन्ध बना हुआ है तो आत्माके प्रति कोई पदार्थ सरक ही न सकेगा । जैसे दो मित्र एक दूसरेके गलेसे पूरी तरह चिपटकर मिल गए अब जब पूर्णतया चिपटकर मिले हैं तो कोई मित्र अब और क्या सरकेगा ? जब दो चीजें बराबर पूरेमें मिली हुई हैं तो उत्सर्पण नाम किसका ? अन्य देशकी चीज अन्य देशमें आये इसे कहते हैं आकर्षण और सरकना। जब आत्मा सर्वव्यापक है और तीनों कालोंमें रहता है तो जहाँ पदार्थ है वहीं आत्मा। फिर पदार्थके खिंचकर आनेका मतलब ही क्या और खिंचकर आ ही नहीं सकते । जहाँ देखो वहीं आत्मा मान लिया उत्सर्पणकी क्या आवश्यकता रही ? जैसे धनुर्धारीने बाण चलाया तो बाण था अभी इस जगह और पहुँचा है मीलभर दूर पर सो उसका उत्सर्पण बन गया, क्योंकि पहिले अन्य जगह था अब बाण अन्य जगह पहुँचा। लेकिन आत्मा जब सब जगह है तो पदार्थोंका, देशका. कालका, आत्माके पास पहुंचनेका मतलब हो कुछ नहीं, इसी तरह जब आत्मा नित्य है, तीनों कालमें रह रहा है, तीनों कालमें फैलकर रह रहा है तो अब कालकी अपेक्षा भी उत्सर्पण नहीं हो सकता। याने कल चीज न मिली थी, आज मिल गयी यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अन्य कालमें कोई चीज हो और फिर अन्य कालके प्रति कुछ रूप बने तो उसे कालकृत उत्सर्पण कहेंगे। जैसे बीज आज बोया और अंकुर उत्पन्न हुए तीन दिन बाद, तो कालका अन्तर आ गया ना। वहाँ यह कह सकेंगे कि नवीन नवीन शक्ति परिणाम को पा पा कर यह बीज अंकुरके प्रति उत्सर्पण कर रहा है। लेकिन जब आत्मा तीन कालमें नित्य फैला हुआ है तो कालकृत भी उत्सर्पण आत्माके प्रति नहीं बन सकता, इस कारण यह कहना कि ये वैभव सम्पदा, स्त्री, ग्रास आदिक सब कुछ देवदत्तके प्रति सरकते हैं, आकृष्ट होते हैं यों धर्मीका विशेषण कहना भी गलत है, देवदत्तके गुणसे आकृष्ट होता ऐसा साध्यका बताना भी गलत है और हेतु दिया है कि चूँकि ये सब पदार्थ देवदत्तके प्रति सरकने वाले हैं यह हेतु भी गलत है, प्रत्येक शब्द गलत हो गये। एक देवदत्तका ठीक निर्णय हुए बिना कि देवदत्त नाम है किसका। तो यों आत्माको भी नाम देवदत्त नहीं रहा।

देवदत्त नामवाच्यताके सम्बन्धमें शङ्काकारके तृतीय विकल्पका निराकरण—अब शङ्काकार कहता है—तो हमारा तीसरा विकल्प मानलो ! शरीर का नाम देवदत्त नहीं, आत्माका नाम देवदत्त नहीं, किन्तु शरीर और आत्माके संयोग का नाम देवदत्त है। (देवदत्तका नाम सुनकर ऊब गए हो तो और कोई नाम धरलो भैया ! एक पुरुषके ही नामकी बात चल रही है) तो देवदत्त शब्दके द्वारा वाच्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शरीर और आत्माका संयोग कहना भी गलत है। यदि शरीर और आत्माके संयोगका नाम देवदत्त है तो देवदत्तके प्रति सब खिंचे चले आ रहे हैं, देवदत्तके गुणसे आकृष्ट हो रहे हैं, इसका अर्थ यह हुआ ना, कि इन दोनोंके संयोगके प्रति सरक रहे हैं और संयोग के गुणसे आकृष्ट हो रहे हैं। अब शरीरका नाम न रहा, आत्माका नाम न रहा, किंतु संयोगका नाम रहा। संयोगको ये देवदत्त मानते हैं। तो सीधा अर्थ रहा कि संयोगके गुणसे खिंचे आ रहे हैं ये सब वैभव, लेकिन संयोग खुद गुण माना गया है। वैशेषिक सिद्धान्तमें २४ गुण माने हैं, उनमें संयोग भी गुण है और संयोगमें एक और गुण मान रहे हो कि संयोगके गुणसे खिंचे हुए आ रहे हैं सब, तो गुणमें कहीं गुण रहा करते हैं ? अरे गुण तो निर्गुण हुआ करते हैं। गुणोंमें गुण नहीं रहता। गुणवानको तो द्रव्य कहते हैं। तब यह कहना गलत हो गया कि देवदत्तके गुणसे वैभव आकृष्ट हैं। देवदत्त नाम है अब संयोगका। संयोगमें अन्य गुण रहते नहीं, इस कारण साध्य गलत हो गया।

देवदत्त नामवाच्यताके सम्बन्धमें चतुर्थ विकल्पका निराकरण - शंकाकार कहता है तो हमारा चौथा विकल्प मान लो, क्योंकि आत्माके संयोगसे सहित शरीरका नाम देवदत्त है। समाधानमें कहते कि इस विकल्पमें भी वही दोष है, विरुद्धत्व दोष है। आखिर ऐसा कहकर भी देवदत्त तो माना है शरीरको होना, आत्मसंयोगसे सहित शरीरको देवदत्त कहो तो देवदत्तके गुणसे आकृष्ट हैं सब वैभव, सिद्ध तो कर रहे थे कि आत्माके गुण विशेषसे आकृष्ट है तभी आत्माको व्यापक मान सकते थे। लेकिन अब सिद्ध हो बैठा कि शरीरके गुणसे आकृष्ट है तब यह हेतु विरोधको सिद्ध कर लेगा, इस कारणसे यह चौथा विकल्प भी समीचीन नहीं है।

देवदत्त नामवाच्यताके सम्बन्धमें पञ्चम विकल्पका निराकरण— शङ्काकार कहता है कि हमारी ५ वीं बात मान लो. याने शरीरके संयोगसे सहित आत्माका नाम देवदत्त है, शरीरका नाम नहीं, क्योंकि उसमें तुम दोष दे रहे कि हेतु विरोधको सिद्ध कर देगा, संयोगका नाम नहीं क्योंकि उसमें दोष दे रहे कि गुणमें गुण कहाँ पाया करता है ? तो यह ५ वीं बात ही सही मानलो कि शरीरके संयोगसे सहित आत्माको देवदत्त कहते हैं। समाधानमें कहते हैं कि इसमें भी मुख्य तो आत्मा रहा ना ! और आत्मा है नित्य व्यापक। तो नित्य और सर्वगत होनेके कारण जो दोष अभी आत्मा नामक द्वितीय विकल्पमें दिया था वे सारे दोष यहाँ आते हैं, क्योंकि आत्मा सब जगह है, सब समय है, कहीं उसका निवारण नहीं हो सकता। तब फिर उत्सर्पणकी बात ही क्या ? देखो ! तुम कह रहे हो शरीरसंयुक्त आत्मा ! रहे संयुक्त आत्मा किन्तु आत्मा तो सर्वगत और नित्य है ना, वैशेषिक सिद्धान्तमें। जैसे कि कोई कहे—घटसंयुक्त आकाश ! तो यह बतलावो कि घटसंयुक्त आकाश सब जगह है कि नहीं ? सब जगह है। घटसंयुक्त आकाश मेरु आदिक पर्वतमें भी है। आकाश एक है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और उसका किन्हीं प्रदेशोंमें घट रखा तो आकाशमे घटका संयोग तो होगया। होनेदो मगर घटसंयुक्त आकाश तो सर्वव्यापक है। जैसे—आपसे ही पूछें कि पुस्तक संयुक्त बेन्च, तो आप बेन्चको कितनी बड़ी कहोगे? उतनी, जितनी है। ४ फिटकी लम्बी बेन्च है। तो पुस्तकसंयुक्त बेन्च कहनेपर कहीं ४ फिटका परिमाण घट न जायगा। इसी तरह शरीरसंयुक्त आत्माको देवदत्त कहनेपर वह देवदत्त अर्थात् आत्मा सर्वगत नित्य हो गया और फिर द्वितीय विकल्पमें जो दोष दिया था वही दोष रहा कि फिर कोई चीज सरक ही नहीं सकती आ ही नहीं सकती। यह दोष बराबर उपस्थित ही रहेगा।

देवदत्त नामवाच्यताके सम्बन्धमें षष्ठ विकल्पकी मीमांसा—अब शङ्काकार कहता है कि हमारी अब आखिरी बात मानलो कि शरीरसे संयुक्त आत्म प्रदेशका नाम देवदत्त है। बात कुछ-कुछ ठिकाने तो आ रही। यदि प्रत्येक शरीरमें रहने वाले आत्मा सब जुदे-जुदे ऐसे आत्माको अनेक मानकर फिर यदि कहा जाता कि शरीरसे संयुक्त आत्माका नाम तुमने देवदत्त रखा तब तो ठीक था, वैसा तो माना ही नहीं। आपका जो नाम है और नाम कहकर पुकारते हैं तो किसको पुकारते हैं? क्या केवल शरीरको? क्या केवल आत्माको? नहीं, किन्तु शरीरसंयुक्त आत्माको पुकारते हैं। देखिये! कोई कहे कि आत्मासे संयुक्त शरीरको पुकारते हैं तो इन दोनों में अन्तर है। आत्मसंयुक्त शरीरको पुकारते हैं यह बात व्यवहारमें ठीक नहीं बनती, क्योंकि शरीर जड़ है, उसे हम क्या समझायें, क्या पुकारें? और जब कहते हैं कि शरीरसंयुक्त आत्माको हम सम्बोध रहे हैं और उन्हींका नाम ये सब हैं जो आपके हैं तो यह बात ठीक बैठती है व्यवहारमें, किन्तु यहाँ कहा जारहा है यह कि शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेशका नाम है देवदत्त! तो यहाँ पूछा जा रहा है कि शरीरसंयुक्त जो आत्माके प्रदेश हैं जैसे कि घटसंयुक्त आकाशप्रदेश! आकाश एक है और जहां घड़ा रखा है वह घट संयुक्त आकाश प्रदेश इस भाँति शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेश, तो यह बतलावो कि वह आत्मप्रदेश काल्पनिक है या वास्तविक?

शरीरसंयुक्त काल्पनिक आत्मप्रदेशोंमें देवदत्त शब्दकी वाच्यताका अभाव—यदि कहो कि वह आत्मप्रदेश काल्पनिक है जहां देवदत्तका शरीर रह रहा है और शरीर संयुक्त जिस आत्मप्रदेशका नाम देवदत्त रख रहे हो वह आत्मप्रदेश काल्पनिक है। तो जब यह कहा जा रहा है कि ये वैभव सम्पदा स्त्री आदिक देवदत्त के गुणसे आकृष्ट हो रहे हैं इसका अर्थ यह निकला कि काल्पनिक आत्मप्रदेशसे आकृष्ट हो रहे हैं क्योंकि वहाँ तुमने शरीर संयुक्त काल्पनिक आत्मप्रदेशका देवदत्त नाम रखा है। तो यह भद्दी और बेतुकी बात कहनेमें आयगी कि यह सम्पदा काल्पनिक आत्मप्रदेशके गुणसे आकृष्ट हो रही है, क्योंकि काल्पनिक आत्मप्रदेशके गुणसे सरक रहे हैं और जैसे आत्मप्रदेश काल्पनिक मान लिया तो आत्मप्रदेश के गुण भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

काल्पनिक हो गए जिस गुणके कारण ये सब आकर्षित हो रहे हैं। तब फिर जब वह
भाग्य ही काल्पनिक हो गया तो उस भाग्यके द्वारा अब जन्मान्तर भी होगा, पर
शरीर मिलेगा तो वह भी परमार्थ न रहेगा याने शरीर भी अब काल्पनिक हो गया।
तो शरीर भी काल्पनिक और शरीरका संयोग भी काल्पनिक और गुण भी काल्पनिक
हो गया। शरीर संयुक्त आत्मप्रदेश भी काल्पनिक, दूसरे यह खिचते आना भी
काल्पनिक। फिर तो आपका कुछ सिद्धान्त ही न रहा। काल्पनिक चीजमें कोई क्रिया
नहीं बना करती। काल्पनिक गुणमें वास्तविक रूप हो सकता है क्या? काल्पनिक
अग्नि से ठंढ मिट जायगी क्या? ठंढ लग रही हो, ४–५ आदमी किसी जगह गोल-
गोल बैठ जायें और यह तय करलें कि समझलो यहाँ आग जल रही है खूब धधकती
हुई तो उस कल्पित आग से ठंढ तो नहीं मिट सकती, अथवा अन्य कोई काम तो
नहीं बन सकता। यदि कल्पित चीज से भी काम बनने लगे तब तो फिर यहीं भोग
भूमि बन जायगी कल्पना कर लिया कि यह है हलुवा और हाथ से उठाया, खाया तो
भर गया क्या पेट? तो कल्पित हो गया जब भाग्य और उस भाग्यके कारण मिलता
है नया शरीर तो नया शरीर भी कल्पित हो गया, सब गुण काल्पत हो गए। तब
यह सिद्ध नहीं हो सकता कि शरीर संयुक्त काल्पनिक आत्मप्रदेशका नाम देवदत्त है।

शरीर संयुक्त पारमार्थिक आत्मप्रदेशोंमें देवदत्त शब्दकी वाच्यताका अभाव

– शंकाकार कहता है तो पारमार्थिक आत्मप्रदेश मानलो शरीरसे संयुक्त वास्त-
विक आत्म प्रदेशका नाम है देवदत्त, तो जरा यह तो बतलावो कि वह वास्तविक
आत्म प्रदेश आत्मासे अभिन्न है या भिन्न है? यदि कहो कि अभिन्न है तो मानो
आत्मा ही हुआ। फिर आत्मा नामक द्वितीय विकल्पमें जो दोष दिये गये हैं वे दोष
यहाँ बराबर आयेंगे। अर्थात् फिर कोई वैभव उस आत्माके प्रति उत्सर्पण न कर
सकेंगे। यदि कहो कि वह वास्तविक आत्मप्रदेश आत्मासे भिन्न है और देवदत्तके गुण
से आकृष्ट हुआ है सो यों पारमार्थिक उनने आत्मप्रदेशोंसे आकृष्ट होता है तो उसके
मायने है वही पूरा आत्मा बन गया और उससे ही सारा काम निकल आया, फिर
अन्य व्यापक एक आत्माके माननेकी जरूरत क्या है? और, मानोगे तो सावयव भी
साथ–साथ मान लो। आत्मा एक बड़ा है और उसके अवयव असंख्यात हैं। इन
अवयवोंमें रह रहा है तो सावयव मानना पड़ेगा। और, सावयव माना तो कार्य
मानना पड़ेगा और अनित्य मानना होगा इस तरह देवदत्त ही सिद्ध नहीं होता कि देव-
दत्त नाम है किसका फिर उसके गुणसे आकृष्ट होता है पदार्थ यह कहना तो बेतुकी
बात रही।

नवीन अनुमानसे आत्माके सर्वगतत्वकी सिद्धिकी शंका और उसका समाधान

अब शंकाकार कहता है कि हमारे इस नवीन अनुमानसे आत्मा सर्वगत
सिद्ध हो जायगा, वह अनुमान प्रयोग यह है कि आत्मा सर्वगत है, क्योंकि इसके गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सभी जगह उपलभ्यमान होते हैं आकाशकी तरह। जैसे आकाशका गुण आकाशका
स्वरूप, आकाशकी बात सब जगह पायी जाती है इस कारण आकाश सर्वव्यापक है.
इसी तरह आत्माके गुण भी सब जगह पाये जाते हैं इस कारण आत्मा सर्वगत है
समाधानमें पूछते हैं कि एक अपने शरीरमें ही सब जगह आत्माके गुण पाये जाते हैं
यह आपके हेतुका मतलब है या अपने शरीरकी तरह दूसरे शरीरमें और अंतरालमें
सब जगह आत्माके गुण पाये जाते हैं यह आपके हेतुका मतलब है ? यदि कहो कि
अपने ही शरीरमें सब जगह आत्माके गुण पाये जाते हैं उसके कारण आत्मा सर्वव्यापक
है तो यह तो विरुद्ध हेतु हो गया। अपने ही शरीरके आत्मामें सर्वगुण पाये जाते हैं
इससे आत्मा शरीरमें ही व्यापक कहलायेगा बाहर व्यापक नही कहला सकता। यदि
कहो कि अपने शरीरकी तरह दूसरे शरीरमें और अन्तरालमें आत्माके गुण पाये जा
रहे हैं तो यह असिद्ध है ऐसा देखा नही जाता। अन्तरालमें तो आत्मगुण जरा भी
नही पाये जाते और पर शरीरमें उसके सम्बन्धित गुण नही पाये जाते, इस कारण यह
भी नही कह सकते कि अपने शरीरकी तरह दूसरे शरीरमें और अन्तरालमें भी आत्मा
के गुण पाये जाते हैं। बुद्धि आदिक हैं आत्माके गुण। वे सब जगह नही पाये जाते।
यदि बुद्धि आदिक गुण सब जगह पाये जायें तो प्रत्येक प्राणी सर्वज्ञ बन जायगा। एक
दुःखी हुआ तो प्रत्येक प्राणी दुःखी हो जायगा क्योंकि अब तो तुम यह मान रहे हो
कि आत्माके गुण सब जगह पाये जाते हैं तब सर्वज्ञता सब प्राणियोंमें क्यों नही पायी
जाती ? दुःख किसी महंतमें ऋषियें क्यों नही पाये जाते ? जब आत्मा सर्वव्यापक है
और आत्माका गुण सब जगह पाया जाता है तब फिर सभीमें सब कुछ बन जायेंगे।

जन्म जन्मान्तरकी अपेक्षा भी सर्वगतत्वकी सिद्धिका अभाव—अब
शंकाकार यह कहता है कि जैसे कोई पुरुष किसी गाँवसे दूसरे गाँवमें जन्म लेता है,
एक गाँवसे दूसरे गाँवमें गमन करता है तो देखो ! वह मनुष्य सब जगह उपलभ्य-
मान हो गया ना। उस गाँवमें था, इस गाँवमें आ गया, इसी तरह जब जन्मान्तर
होता है. एक जीव मरकर एक जगहसे दूसरी जगह जन्म लेता है तो जन्मान्तरमें भी
आत्माके गुण पाये गए यह अर्थ करेंगे जिससे सिद्ध होगा कि सब जगह आत्माके गुण
पाये जाते हैं इस लोकमें भी और पर लोकमें भी, सभी जगह आत्माके गुण पाये जा
रहे हैं इस कारण आत्मा सर्वव्यापक है। शंकाकारकी इस शंकामें क्षेत्रदृष्टि ही मात्र
नही रही। अब इसमें कालका भी सम्बन्ध जोड़ दिया गया। मरकर दूसरी जगह जन्म
ले तो वहाँपर भी आत्माके गुण ही तो पायेंगे। बुद्धि सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न,
धर्म, अधर्म ये सारे आत्माके गुण हैं और जन्मान्तरमें भी ये पाये जाते हैं, इससे आत्मा
सर्वव्यापक है। क्षेत्रसे भी व्यापक बन गया, कालसे भी व्यापक बन गया। इस शंका
के समाधानमें पूछते हैं कि एक जन्मसे दूसरे जन्ममें आत्माके गुण पाये गए तो क्या
एक साथ पाये गए या क्रमसे ? एक साथ पाये जाते यह तो कह नही सकते। असिद्ध
है। अरे इस जन्ममें आज हैं, दूसरे जन्ममें जायेंगे १० वर्ष बाद। तो एक साथ कैसे वे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुण दोनों जगह पाये गए ? वहाँ तो वर्षोंका, दिनोंका अन्तर हो जाता है। यदि कहो कि क्रमसे तो गुण पाये जायेंगे जो गुण इस भवमें आत्माके हैं अगले भवमें जानेपर वे गुण वहाँ पाये जायेंगे। इस तरह आत्माके गुण सर्वत्र पाये गए और आत्मा सर्वव्यापक बन गया। समाधानमें कहते हैं कि इस तरहसे यदि सर्वगत माना जाय क्रमसे पहुँच पहुँचकर तो इन सारी चीजोंको सर्वव्यापक कह बैठेंगे। घड़ा भी आज यहाँ है कल दूसरी जगह रख देंगे, फिर तीसरी जगह रख देंगे, तो यों मानलो सारी दुनियामें रख देंगे, फिर तो घड़ा भी सर्वव्यापक हो गया, क्योंकि घड़ेके आकार, ढाँचा सब जगह पाये गए। शंकाकार कहता है कि यह पटतर देना ठीक नहीं है। घड़ा तो देशान्तरमें गमन कर रहा अर्थात् एक देशसे दूसरे देशमें घड़ेको रख दिया गया है इस कारण घड़े में क्रमसे उपलभ्यमान गुण होकर भी घड़ा व्यापक न माना जायगा, क्योंकि वह गमन करता है, एक जगहसे दूसरी जगह जाता है। उत्तरमें कहते तो इसी तरह आत्मामें भी देशान्तर गमन होनेसे सर्वत्र उपलभ्यमान गुण होनेसे आत्मा सर्वगत न माना जायगा, क्योंकि घट पट आदिककी तरह आत्मा भी सक्रिय है। देखो ! जीवित अवस्थामें जब हम चलते हैं तो आत्मामें भी क्रिया होती है, शरीरमें भी क्रिया होती है। मरणके बाद शरीर कहीं मिल जायगा। और आत्मोमें क्रिया होती है, वह जन्म स्थानपर पहुँचता है और आत्माके साथ रहने वाला जो सूक्ष्म शरीर है उसका भी गमन होता है। प्रत्यक्षसे सब लोग जानते हैं कि एक देशसे दूसरे देशमें आत्मा पहुँचता है और तभी लोग ऐसा कहते भी हैं कि मैं एक योजन तक आ गया। मैं इतने मील आ गया तो गमन सिद्ध हुआ ना, आत्मामें क्रिया सिद्ध हुई ना ? क्रिया हुए बिना यह कैसे कहा जा सकता कि मैं दो कोश आ गया? शंकाकार कहता है कि जो आ या वह मन है और शरीर है। आत्मा नहीं आ गया, यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि मैं आ गया इसमें शब्दके द्वारा वाच्य जो कुछ हुआ सो किसके लिए मैं कहा गया ? मैं आ गया, मायने मन आ गया, मैं आ गया, मायने शरीर आ गया। तो मन और शरीरको मैं शब्द द्वारा कहा गया, उस हीको मैं कहा जा रहा है. ऐसा यदि मान लोगे तो चारुवाक मतका प्रसंग आता है, अर्थात् चेतन आत्मा कुछ नहीं रहा। मन, शरीर, शरीरके रचने वाले परमाणु, मनके रचने वाले परमाणु बस इनका जो पिण्ड है उस हीका नाम आत्मा रखा। आत्मा फिर अलगसे कुछ न रहा। जब अहं शब्दसे मन और शरीरको कहने लगे तब तो आत्माका अस्तित्व न रहा।

आत्माके निष्क्रियत्व और सक्रियत्वकी मीमांसा—देखो भैया ! अब इसके आगे यह प्रसग जुड़ गया कि शकाकार तो कहेगा कि आत्मा निष्क्रिय है और सिद्ध किया जा रहा है कि आत्मा सक्रिय है। इस सम्बन्धमें थोड़ा दृष्टियोंसे यह समझलें कि आत्मा निष्क्रिय भी है और सक्रिय भी। जब हम आत्माको भेददृष्टिसे निरखते हैं, चैतन्यमात्र आत्मा,प्रतिभास स्वरूप आत्मा, तो उस प्रतिभास स्वरूपमें कुछ क्रिया न नजर आयगी। तो स्वभाव स्वरूपकी दृष्टिसे आत्मा निष्क्रिय है किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षेत्रदृष्टिसे वह आत्मा इतने आवान्तर परिमाण वाला है, और यह एक देशसे दूसरे देश तक पहुँच गया, इस तरह प्रदेशदृष्टिसे निरखेंगे तो आत्माकी सक्रियता ज्ञात होगी। लेकिन सर्वथा यह कहना कि आत्मा निष्क्रिय है, और निष्क्रियताका इतना बढ़ावा देना कि एक देशसे दूसरे देश गमन करनेकी बात तो दूर रही, उसमें परिणमनकी भी क्रिया, अर्थात् परिणति नही होती। इस तरह आत्माको निष्क्रिय माना जा रहा है शंकाकार द्वारा, और उस सम्बन्धमें यह समीक्षा चल रही है।

आत्माको सक्रिय माननेपर मूर्तिसम्बन्धकी आशंका और उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि आत्माको सक्रिय माननेपर मूर्तियों के साथ सम्बन्ध बन जायगा, जैसे ढेला पत्थर। ढेला पत्थर क्रियावान हैं। ढेलाको फेंका तो एक जगहसे दूसरी जगह पहुंच गया। तो जो क्रियावान होता है उसकी किसी दूसरे मूर्त पदार्थके साथ भिडंत बन सकती है। देखो ना—जब ढेला फेंकते हैं भींटमें या जमीनमें तो उसका भिड़ाव हो जाता, सम्बन्ध बन जाता। यदि आत्माको सक्रिय मानोगे तो यह दोष आयगा कि आत्माको मूर्तियोंके साथ सम्बन्ध बन जाना चाहिए। इसके उत्तरमें शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि मूर्तिका अर्थ क्या है? आत्माको सक्रिय माननेपर मूर्तियोंके साथ सम्बन्ध बननेका जो दोष दिया जा रहा है उस मूर्ति शब्दका आपने अर्थ क्या लगाया? क्या मूर्तिका यह अर्थ है कि अव्यापी द्रव्यके बराबर रहना। असर्वगत द्रव्य हैं शरीर। और उस शरीरके परिमाणमें आत्माका रहना इसका अर्थ मूर्ति है क्या? या रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाला हो जाना, यह मूर्तिका अर्थ करते हो? यदि प्रथम पक्षकी बात कहोगे अर्थात् आत्मा असर्वगत द्रव्य के परिमाणमें रहता है, शरीरप्रमाण रहता है इसका नाम मूर्ति है तो यह तो कोई दोषकी बात नहीं है। यह तो इष्ट है, यह तो सिद्धान्त की बात है। जो चीज इष्ट हो वह दोषके लिए नहीं बना करती। आत्मा देह प्रमाण है और देहप्रमाण होनेका ही नाम अगर मूर्ति धरते हो तो नामसे इसका क्या विवाद? नाम तो कुछ भी रख दो! आत्माको जैसे कोई चेतन स्वीकार करके उसका नाम पुद्गल धरदे, भौतिक धरदे, तो धरदे, पर उसका यथार्थ ज्ञान आ गया, फिर उसमें दोष नही है। तो शरीर प्रमाण आत्माके होनेका नाम यदि मूर्ति है तो रहा आये, उसमें कोई दोष नही है। तो शरीरप्रमाण आत्माके होनेका नाम यदि मूर्ति है तो रहा आये, उसमें कोई दोष नही है। शङ्काकार कहता है कि असर्वगत देहपरिमाण आत्माके रहनेसे मूर्तिक नही बनता तो दूसरी बात मानो कि रूप, रस, गंध, स्पर्शवानको मूर्तिक कहते हैं और मूर्तिकका यह स्वरूप माननेपर यह दोष आता है कि आत्मा यदि सक्रिय है तो लोष्ठ बाण आदिककी तरह आत्माका मूर्तिकोंके साथ सम्बन्ध बन बैठेगा। समाधानमें कहते हैं कि यह दोष देना असङ्गत है, क्योंकि सक्रिय होनेका और रूपादिवान मूर्तिक बनने का अविनाभाव नही है। यह व्याप्ति नही बन सकती कि जो-जो सक्रिय हो, क्रियावान हो वह रूपादिमान मूर्ति वाला हुआ करता है अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला हुआ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता, यह व्याप्ति नहीं बन सकती। देखो ! मन भी सक्रिय माना गया, पर मूर्त नहीं माना गया। शङ्काकारके सिद्धान्तमें मनको क्रिया वाला तो माना गया, पर मनके रूप रस आदिक नहीं माने गये, तो व्याप्ति तो न बनी। और इसी कारण तुम यह भी युक्ति नहीं दे सकते कि आत्मा रूप आदिक वाली मूर्तिसे युक्त है अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला है सक्रिय होनेसे, बाण आदिककी तरह। जैसे बाण सक्रिय है गमन करता है तो वह रूपादिमान है। यों आत्माको सक्रिय माना जाय तो रूपादिवाला बन बैठेगा, यह दोष यों नहीं दिया जा सकता कि व्याप्ति ही ऐसी नहीं है कि जो–जो सक्रिय हो वह रूपादिमान हो। मन तो सक्रिय है, पर रूपादिमान नहीं माना गया। शंकाकार कहता है कि हम रूपादिमान मान लेंगे, इसको भी पक्षमें डाल लेंगे तो कहते हैं कि प्रसङ्गमें कह दिया कुछ, इससे क्या सिद्ध होता है ? आपके सिद्धान्तमें तो मनको रूपादिमान नहीं माना। वैशेषिक सिद्धान्तमें यह कथन है कि रूपादिक विशेष गुणका आधार न होकर मन पदार्थको प्रकाशित करता है तो यह व्याप्ति न बनी कि जो–जो सक्रिय हों वे–वे मूर्ति हों, अतएव आत्मा सक्रिय है तो मूर्तिक बन ही जाय, यह बात न बनेगी।

आत्माको सक्रिय माननेपर अनित्यत्वके दोषकी आशङ्का और उसका समाधान—अब शङ्काकार कहता है कि अब दूसरा दोष सुनो ! आत्माको सक्रिय माननेपर। यदि आत्मा क्रियावान है, एक देशसे दूसरे देशमें गमन करता है तो आत्मा अनित्य बन जायगा घट पट आदिककी तरह। जैसे—घड़ा कपड़ा, ये एक देशसे दूसरे देशमें जाया करते हैं तो अनित्य हैं कि नहीं ? आत्मा भी अगर जाया करे, सक्रिय बन जाय तो वह भी अनित्य बन जायगा। समाधानमें कहते हैं कि यह केवल बात ही बात कहनेकी है। देखो ! परमाणु सक्रिय है कि नहीं ? सक्रिय है, पर वह अनित्य तो नहीं माना गया। यह नियम तो नहीं कि जो–जो सक्रिय हो वह अनित्य ही हो। सक्रिय पदार्थ नित्य भी होते हैं। देखो ! परमाणु सक्रिय है, देशसे देशान्तरमें गमन करता है, लेकिन अनित्य नहीं है। मन भी सक्रिय है, किन्तु अनित्य नहीं माना गया है। और, फिर यह बतलावो कि सक्रिय माननेके कारण आत्मामें जो अनित्यपनेका दोष देते हो तो कथंचित् अनित्यपनेकी बात बताते हो या सर्वथा अनित्यकी बात बताते हो ? याने आत्मा सक्रिय है इस कारण आत्मा कथंचित् अनित्य है यह बात कहते हो या आत्मा सक्रिय है इस कारण आत्मा सर्वथा अनित्य है यह आपका मंतव्य है ?

आत्माको सक्रिय माननेपर कथंचित् अनित्यत्वकी सिद्धसाधनता—यदि कहो कि कथंचित् अनित्य है यह हमारा मंतव्य है, तो कहते हैं कि यह तो सिद्ध साधन है अर्थात् सही बात है। आत्मा कथंचित् अनित्य है ही। देखिये ! जो भी पदार्थ होता है वह है कब रह सकता है ? जब उसमें कोई व्यक्त रूप हो, उसकी कोई अवस्था बने, उसकी परिणति बने। किसीकी परिणति कुछ नहीं, आकार कुछ नहीं, दिशा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ नही, अनुभवन कुछ भी नही, और है मान लिया जाय यह बुद्धिमें नहीं आसकता, जो भी पदार्थ है वह नियमसे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। शुद्ध पदार्थ है कोई तो उस का उत्पादव्यय हमारी मोटी समझमें नही आ पाता। जैसे आकाश शुद्ध पदार्थ है, पर उसका उत्पादव्यय हमारी समझमें नही आ पारहा कि आकाश किस तरह तो उत्पन्न हो रहा है प्रतिसमय और किस तरह आकाशका व्यय होरहा है प्रतिसमय. यह हमारी बुद्धिमें नही आ रहा लेकिन भगवान सर्वज्ञकी आज्ञा है आगमका कथन है और युक्तिका तगादा है कि जो-जो है वह नियमसे ध्रौव्यात्मक होनेकी भाँति उत्पादव्ययात्मक भी है। यों तो कोई बिजलीका लट्टू जल रहा है. आधा घंटा तक जला, हम उसमें भी यह नही परख कर पाते कि पहिले मिनटमें जैसी यह बिजली थी देखो, लगातार २६ मिनट तक वही तो है इसने उत्पाद क्या किया ? अपने आपमें नवीन बात कौनसी पैदा की ? और कौन सी बात इसकी बिगड़ गई ? कौन सा व्यय हो गया ? यों मोटे रूपसे यहाँ कुछ समझमें नही आता, लेकिन पहिले मिनटमें जो उजेलारूप उसका कार्य है दूसरे मिनटमें उजेलारूप कार्य करनेमें क्या उसकी शक्ति नही लगी ? वह दूसरे मिनटका दूसरा पुरुषार्थ है. दूसरी क्रिया है, इस तरह प्रति सेकेण्डमें, सेकेण्डके भी अनेक हिस्से करके प्रतिभागमें प्रतिसमयमें वह अपना नवीन-नवीन परिणमन कर रहा है। तो जब दीपक कोई शुद्ध पदार्थ नही, वहाँ भी एक समान कार्य होनेके कारण उत्पादव्यय समझमें नही आता तो शुद्ध पदार्थमें एक समान परिणमन होनेके कारण उत्पादव्यय एकदम बुद्धिमें नही आये तो न आये, लेकिन यह अकाट्य नियम है कि जो भी पदार्थ हैं वे नियमसे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं। तो आत्माको सक्रिय मानकर आत्माको कथंचित् अनित्यका दोष देना, यह दोष नही, यह तो गुणकी बात कही जा रही है। आत्मा कथंचित् अनित्य है। वैसे तो देखो, हम आप आत्मा हैं ना ! कभी दुःखका अनुभव कर रहे कभी सुखका अनुभव कर रहे. कभी अज्ञानमय परिणाम रहे, कभी ज्ञानप्रकाशमें आ गए, ऐसी जो इसमें नाना अवस्थायें बन रही हैं यही तो उत्पाद-व्यय है। शुद्ध दशामें अर्थात् शरीर कर्मविकारसे रहित आत्मा हो वहाँ क्या परिणमन करता है ? वह विशेष अन्तर्दृष्टिसे गम्य हो सकता है। साधारणरूपतया निरखनेसे शुद्धका उत्पादव्यय नही जाना जा सकता है। शुद्ध आत्मा प्रतिसमय विशुद्ध परिपूर्ण ज्ञानरूप परिणम रहा है और विशुद्ध आनन्दरूप परिणम रहा है। तो आत्मा कथंचित् अनित्य है, यह बात युक्त ही है।

सक्रिय माननेपर भी आत्माकी सर्वथा अनित्यताका अप्रसंग—यदि कहो कि हम सर्वथा अनित्यपनेका दोष दे रहे हैं कि आत्मा सक्रिय होनेपर सर्वथा अनित्य बन जायगा घट आदिककी तरह तो भाई, तुम्हारा दृष्टान्त भी सर्वथा अनित्य नही है, घट पट भी सर्वथा अनित्य नही है, फिर किसीको सर्वथा अनित्य ही क्या सिद्ध करोगे ? देखो घड़ा जिन परमाणुवोंसे रचा गया है वह है उसका मूल द्रव्य। वह तो सर्वथा अनित्य नही है, क्या उन सतोंका असत्व हो जाता है ? वे कुछ न रहें, उनका

http://sahjanandvarnishastra.org/

समूल विनाश हो जाय क्या ऐसा हो सकता है ? घड़ा फूट गया, घड़ेकी पर्याय मिट गई, मगर जिन स्कंधोंसे, जिन परमाणुवोंसे घड़ा बना था वे स्कंध और परमाणु नही मिटे। कभी उन खपरियोंका बारीक चूरा भी कर दिया जाय तो वे खपरियाँ परिणति में मिट गई, चूरा बन गया लेकिन उनका मूल स्कंध परमाणु यह नही मिटा। हवा चले, बिखर जाय वह चूरा उसमें कुछ नजर न आवे लेकिन उनके सूक्ष्म स्कंध और परमाणु बराबर उतनेके ही उतने हैं, उनमें कुछ घटेगा नही, उनमें कुछ बढ़ेगा नही। तो देखो ! घट पट आदिक ये सारे पदार्थ भी सर्वथा अनित्य नही हैं।

आत्माको निष्क्रिय माननेपर संसारके सद्भावकी सिद्धिकी अशक्यता

यहाँ अब सिद्धान्तकी बात कही जा रही है कि आत्माको निष्क्रिय माननेपर अर्थात् देशसे देशान्तरमें गमन नही होता, आत्माको ऐसा माननेपर संसारका अभाव होजायगा संसार तत्त्वकी सिद्धि न की जा सकेगी, क्योंकि बतलावो अच्छा संसारी नाम किसका है ? संसार किसका होता है ? क्या शरीरका संसार चलता है या यह सारा संसार मनका है ? या आत्माका है ? यों तीन विकल्प किए। यह संसार अर्थात् परिभ्रमण जन्म जन्मान्तरका ग्रहण, क्रोधादिक विषय कषायोंका परिणमन, यह सब संसार है किसका ? शरीरका, या मनका या आत्माका ? शरीरका तो कह नही सकते, क्योंकि मनुष्य लोग जिस शरीरको जला देते हैं, वह शरीर जलकर राख हो गया, अब वह शरीर स्वर्गोंमें थोड़े ही गमन करता है। वह तो यहीं राख हो गया। जब शरीर यहाँ से मरकर स्वर्गमें नही गमन कर सकता, अन्यत्र नही जाता शरीर तो संसार शरीरका न रहा। जन्म जन्मान्तरका होना ये शरीरमें तो न रहे। एक ही शरीर मरकर स्वर्गादिकमें चला जाय यह नही बनता, अतएव संसार शरीरका सिद्ध नही होता। यदि कहो कि संसार मनका है मनका परिभ्रमण है। मनका गमन है। मनमें विषय कषाय हैं तो उत्तरमें पूछते हैं कि यह बतलावो कि मन निष्क्रिय है या सक्रिय ? संसार यदि मनका बताते हो, मनने ही दूसरा जन्म लिया, मनका ही यह सारा संसार बन रहा है तो वह निष्क्रिय है या सक्रिय ? उत्तर दो ! यदि कहो कि मन निष्क्रिय है तो अब संसार नहीं बन सकता। जब एक देशसे दूसरे देशमें न जायगा मन तो जैसे शरीर राख बनकर नही जा सकता तो मन निष्क्रिय होनेके कारण नही जा सका, फिर मन का संसार कहाँ रहा ? यदि कहो कि मन सक्रिय है, मनमें क्रिया होती है तो मन और क्रिया ये जो दो बातें हुई वे दोनों परस्परमें भिन्न हैं या अभिन्न ? मनसे मनकी क्रिया भिन्न है या अभिन्न है ? यदि कहो कि मनकी क्रिया मनसे अभिन्न है तो अब मन और क्रिया एक ही चीज कहलाने लगे, अभिन्नका अर्थ ही यह है कि वहाँ दो बातें नही हैं। मन है सो क्रिया, क्रिया है सो मन, और क्रिया है अनित्य तो मन भी अनित्य बन जायगा। तब फिर मन क्षणमात्र भी न ठहर सका। फिर उसका संसार ही क्या बना ? यदि कहो कि मनकी क्रिया मनसे भिन्न है तो जब मनका काम, मनकी गति मनसे जुदी है तो उसका सम्बन्ध कैसे माना जाय कि गति मनकी है। जैसे ! वेन्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जुदी चीज है, दरी जुदी चीज है। सम्बंध तो नही कहा जा सकता कि बेन्चकी दरी है, दरीकी बेन्च है, भिन्न-भिन्न चीजें हैं दोनों। इसी प्रकार मनकी क्रिया यदि मनसे भिन्न हैं तो उनमें सम्बंध नही बन सकता, किसी प्रकारका सम्बंध संयोग अथवा समवाय। समवायका तो निषेध किया और संयोग द्रव्य द्रव्योंमें होता यह है क्रिया और द्रव्य, तो द्रव्य और क्रिया होनेसे मनका और मनकी क्रियाका संयोग सम्बंध न बनेगा और समवाय सम्बंध कोई चीज ही नहीं। उसका तो निषेध ही किया है। तो मनसे मनकी क्रियाको भिन्न माननेपर मनके साथ क्रियासे सम्बन्ध नही बन सकता। तो माथने यह हुआ कि यह संसार मनका भी नही कहा जा सकता।

अचेतन मनमें अनिष्टपरिवहारपूर्वक इष्टप्रवृत्तिकी शक्यताके सम्बन्ध में चार विकल्प— और फिर संसार मनका माननेपर एक दोष यह है कि मन तो अचेतन है अचेतन मन अनिष्ट नरक आदिक गतिको छोड़कर इष्ट स्वर्ग आदिकमें प्रवृत्त करा दे यह कैसे सम्भव है? जिसमें चेतनता नही, ज्ञान नही वह अनिष्टसे तो हटा दे और इष्टमें लगा दे यह बात कैसे बन सकती है? यह बात तो ज्ञानमें ही सम्भव है कि अहितका परिहार करा दे और हितकी प्राप्ति करा दे, और जो ज्ञान है सो आत्मा है। तो अचेतन मनमें यह बात न बन सकेगी कि वह अनिष्ट बुद्धिसे हटकर इष्ट स्वर्ग आदिक गतियोंमें प्रवर्तादे। यदि हम अनिष्टका परिहार करके इष्टमें लगा देते हैं तो किस तरह लगाते हैं सो बताओ? क्या स्वभावसे ही अचेतन मन स्वर्गादिक गतियोंमें प्रवृत्ति करा देता है या ईश्वरकी प्रेरणा होती है मनके लिये तो ईश्वर से प्रेरित होकर मन अनिष्ट गतिको छोड़कर इष्ट गतिमें लगता है, या मन सम्बन्धी आत्माकी प्रेरणासे मन अनिष्ट गतियोंको छोड़कर इष्ट गतिमें लगाता है या भाग्यसे प्रेरित होकर यह मन अनिष्ट गतियोंसे छूटकर स्वर्गादिक गतियोंमें लगाता है? इस तरह यहाँ चार विकल्प किए कि अचेतन मन कैसे नरक आदिक गतियोंका परिहार कराकर स्वर्गादिकमें प्रवृत्ति कराता है? अब इसका क्रमसे उत्तर होगा।

स्वभावतः अचेतन मनकी इष्टानिष्ट प्रवृत्तिनिवृत्तिके विकल्पका निराकरण— शंकाकार आत्माको निष्क्रिय मानता है अर्थात् आत्मामें हलन, चलन गमन यह कुछ नही होता। तो निष्क्रिय माननेपर आपत्ति यह दी गई थी कि फिर संसारका अभाव हो जायगा, क्योंकि संसार किसका है? क्या शरीरका संसार चल रहा है या मनका या आत्माका? इनमेंसे द्वितीय विकल्पका विचार चल रहा है। मन का संसार यदि मानते हैं तो मन तो है अचेतन। अतचेतन मन नरक आदिक गतिसे हट जाय और स्वर्ग आदिकमें लग जाय यह बात कैसे सम्भव है? क्या स्वभावतः सम्भवसे या ईश्वरकी प्रेरणासे, या मन सहित आत्माकी प्रेरणासे या भाग्यकी प्रेरणा से? इन विकल्पोंमें यदि पहिली बात कहोगे कि अचेतन मन स्वभावसे ही अनिष्ट गति का परिहार करके स्वर्गादिकमें प्रवृत्ति कराता है तब तो सभी जगह ज्ञानके लिए जला-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ञ्जलि दे दी गयी। जलाञ्जलि कहते हैं काम खतम होनेको। कोइ लोग तिलाञ्जलि भी कहते हैं। जैसे जब कोई विवाह आदिक उत्सवके नेगचार होते हैं तो कोई नेग समाप्त होनेपर जलकी अंजलि दी जाती है अथवा कोई लाकरूढ़ि सूर्यपूजा आदिक होने पर उस विधिके समय जलांजलि हुआ करती है। ऐसे सब कार्य समाप्त होनेका नाम जलांजलि है। और, कहावतमें काम नष्ट होनेका नाम जलांजलि है। यदि स्वभावसे ही अचेतन मन सब कुछ काम करने लगे तो फिर ज्ञानका काम क्या रहा ? देखो ! अब ज्ञानके अभावमें भी अचेतन मन इष्ट अनिष्ट वस्तुओंमें प्रवृत्ति करने लगा है।

ईश्वरकी प्रेरणासे अचेतन मनकी इष्टानिष्ट गतिमें प्रवृत्तिनिवृत्तिके विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि ईश्वरकी प्रेरणासे अचेतन मन इष्ट अनिष्ट वस्तुवोंमें प्रवृत्ति निवृत्ति करता है तो यह बात यों युक्त नहीं है कि पहिले तो यह सिद्ध नहीं है कि ईश्वरकी प्रेरणा ईश्वरका कार्य है, ईश्वर-सम्बन्धित बात ही सिद्ध नहीं है, अथवा मान लो, हो इस ईश्वरका आग्रह, तो वह ईश्वरका आग्रह क्या है जिससे कि आत्मा इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रवृत्ति निवृत्ति करनेके लिए प्रेरित हो जाय, अर्थात् ईश्वरकी प्रेरणासे मन प्रेरित होना मानते हो। इससे भला तो यह था कि तुम ईश्वरकी प्रेरणासे आत्माको प्रेरित मान लो, क्योंकि वैशेषिक सिद्धान्तके आगम भी यह कहा करते हैं कि "यह प्राणी अपने सुख दुःखके अज्ञानी हैं, सो ईश्वरसे प्रेरित होता हुआ ही यह प्राणी स्वर्गादिकमें अथवा नरकमें जाता है।" तो मनकी बात कहाँ आयी ? क्या ईश्वरकी प्रेरणा पाकर यह मन स्वर्गमें और नरकमें जाता है ऐसा कोई मानता है ? अधिकसे अधिक परमान्यतामें चले तो जीवके लिए मानता है। इससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि ईश्वरकी प्रेरणासे मन इष्ट कार्योंमें लगता है और अनिष्ट बातोंसे हटता है और इस कारण सारा संसार मनका है।

मनःसम्बन्धित आत्माकी प्रेरणासे एव अदृष्टकी प्रेरणासे भी मनके संसारत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि मन सम्बन्धित आत्माकी प्रेरणासे मन इष्ट अनिष्ट कार्योंमें लगता है, हटता है, इसमें भी यह बात पूछने योग्य है कि ज्ञात होकर मन इष्टमें लगता है या अज्ञात होकर मन इष्टमें लगनेके लिए प्रेरित होता है ? यदि कहो कि ज्ञात होकर, सो यह बात असिद्ध है। प्रत्येक प्राणीको जंतुमात्रको मनका कुछ परिज्ञान नहीं है। जैसे दरी, चौकी आदि चीजका ज्ञान हो जाता है, इस तरह किसीको भी मनका ज्ञान है क्या ? जैसे—यहां बेन्च है इसी प्रकार यह मन है ऐसा जंतुमात्रको मनका परिज्ञान नहीं है और ज्ञान होकर ही मन प्रेरित होना माना है तो जंतुमात्रको (अथवा विरलोंको हो जाय, किन्तु सर्वसाधारणको) मन ज्ञात नहीं है, फिर मन प्रेरित न हो सकेगा, न इष्ट अनिष्टका परिहार ग्रहण हो सकेगा, फिर संसार भी नहीं बन सकता। यदि कहो कि यह मन अज्ञात होकर ही प्रेरित हो जाता है आत्माके द्वारा तो अज्ञात चीज कैसे प्रेरित हो सकती है ? धनुषबाण चलाने वाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को बाण ज्ञानमें है, यह है, तभी तो बाणको प्रेरित करता है। यदि मन जाना ही नही जाता है तो वह आत्माके द्वारा या अन्य किसीके द्वारा कैसे प्रेरित हो जाता है ? इसका हम दृष्टान्त देते हैं। जैसे सोया हुआ मनुष्य है और उसका हाथ चल जाता है तो देखो. अज्ञात चल गया ना हाथ ! सोये हुए मनुष्यने जानबूझकर तो हाथ नही चलाया। उत्तर देते हैं कि वह चल गया हाथ मगर अहितका त्याग करके और अहितमें लगानेके ढंगसे तो हाथ नही चलता स्वप्नमें ? कहो, धधकती हुई आगपर ही उसका हाथ पड़ जाय, तो उसे प्रेरणा न कहेंगे। वह तो चल उठा अन्यथा जलती हुई अग्निमें जो ज्वालायें उठती हैं वे भी चलती हुई पाई जाती हैं, पर वहाँ अहित परिहार हितादिक ग्रहणकी बात तो नही है। इससे यह भी नही कह सकते कि मन सम्बन्धी जीवसे प्रेरित होकर यह मन स्वर्गादिक गतियोंमें प्रवृत्ति करता है और तब संसार मनका कहलाता। शङ्काकार यहाँ मनको संसारी बताकर आत्माको निष्क्रिय सिद्ध करना चाहता है। जो संसार है वह सब मनका है। मन ही बदलता है, मन ही जन्म लेता है मनमें ही क्रिया होती है। तो निष्क्रिय है ऐसा सिद्ध करनेके लिये मनके विकल्पकी बात चला रहा है। अब चौथा विकल्प लेते हो कि भाग्यसे प्रेरित होकर मन स्वर्ग आदिक गतियोंमें लगता है तो यह भी असार बात है, क्योंकि भाग्य भी अचेतन है। तो अचेतन भाग्य मनका प्रेरक बन जाय यह कैसे हो सकता है ? इससे तो अच्छा यह था कि यही मान लेना कि भाग्यसे प्रेरित होता हुआ यह जीव ही प्रवृत्ति करता है, स्वर्गादिकमें जन्म लेता है चेतन होनेसे। देखा भी जाता है कि वशीकरण औषधि मंत्र आदिक संयुक्त जो चेतन पुरुष है वही तो अनिष्ट गृहको छोड़ कर इष्ट गृहमें प्रवेश करता है। इससे सिद्ध है कि संसार मनका भी नही बन सकता।

आत्माके संसारत्वकी मीमांसा—यदि कहो कि संसार आत्माका है, आत्मा को निष्क्रिय सिद्ध करनेके लिये शङ्काकारका प्रयत्न चल रहा है। निष्क्रिय माननेपर संसारके अभावकी बात बताई गई थी तो वहाँ संसार किसका है ? यही प्रश्न बहुत पहिलेसे चल रहा है। समाधान—आत्माका संसार यदि मानते हो तो देखो ! एक देहको छोड़कर अन्य देशमें यह आत्मा जाय तब तो आत्माका संसार सिद्ध हो। संसार का अर्थ ही यह है कि एक भवको छोड़कर दूसरे भवमें जाय ! जन्मजन्मान्तरको लेता रहे जन्म-मरणकी परम्पराका नाम ही संसार है। ऐसा आत्मा यदि एक देहको छोड़ कर अन्य देहमें जाता है यह मान लो तो ठीक है. आत्माका संसार है। और जब ऐसा मानलो कि आत्मा एक देहको छोड़कर अन्य देहमें जाता है, तब दोनों ही बातें तुम्हारी सिद्ध नही हो सकतीं जो शङ्काकारको सिद्ध करना था, क्या ? आत्माके गुण सब जगह पाये जाते हैं। जब एक देहमें था अब उसे छोड़कर दूसरे देहमें आत्मा गया, तो जब वहाँ था तब आत्माका गुण दूसरी जगह न था, जहाँ कि जन्म लेना है और जब दूसरी जगहमें आत्मा पहुंचा तो उसका गुण पहिले देहकी जगह न रहा तो आत्मा का गुण बुद्धि आदिक सब जगह पाये जाते हैं यह बात असिद्ध हो गई। और, जब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मा एक देहको छोड़कर अन्य देहमें गया तो आत्मा सर्वगत है यह बात भी सिद्ध नही हुई घटकी तरह। जैसे एक घड़ा एक जगहसे दूसरी जगहमें गया तो इससे यह सिद्ध हुआ ना कि घटका गुण सब जगह नही है और घट सर्वगत भी नही है। तो आत्माका संसार माननेपर एक देहको छोड़कर अन्य देहमें जन्म माननेपर देहान्तरको प्राप्त करना माननेपर न आत्मा सब जगह पाये जाने वाले गुण वाला रहा और न सर्वगत रहा।

आत्माकी सर्वगतताकी सिद्धिके लिये शंकाकार प्रस्तुत हेतुके दृष्टान्त में साधन विकलता—शंकाकारका इस प्रसगमें मूल वक्तव्य यह है कि आत्मा सर्वगत है, क्योंकि इसके गुण सब जगह पाये जाते हैं आकाशकी तरह। इस अनुमानके ढाँचे का निराकरण करके अब यह कह रहे हैं कि दृष्टान्त भी जो दिया गया है आकाशकी तरह तो यह बतलावो कि आकाशका कौन सा गुण सब जगह पाया जाता है? जो बात प्रकृतमें सिद्ध करनेके लिए कही जाय, उसे जो दृष्टान्त दिया जाय उसमें साध्य और साधन तो पाये जाने चाहिएँ। आत्मा सर्वव्यापी है, क्योंकि इसके गुण सब जगह पाये जाते हैं आकाशकी तरह भीतर। तो आकाशमें यह घटित करना चाहिये ना कि आकाशके गुण सब जगह पाये जाते हैं इस कारण आकाश सर्वगत है। भला बतलावो तो सही कि आत्माका कौन सा गुण सब जगह पाया जा रहा है? क्या शब्द सब जगह पाया जा रहा है या महत्त्व सब जगह पाया जा रहा है? वैशेषिक सिद्धान्तमें आकाशके दो गुण माने हैं एक तो शब्द और दूसरा महान परिमाण होना। तो शब्द सब जगह पाया जाता है यह बात असिद्ध है। प्रथम तो सब जगह पाया नही जाता और फिर शब्द आकाशका गुण ही नही है। आकाशका गुण फिर और कौन सा रहा? यदि कहो कि महत्त्व गुण सब जगह पाया जा रहा है, मायने आकाशका महा परिमाण गुण सब जगह पाया जा रहा है सो यह बात असिद्ध है। महत्त्व तो इन्द्रिय-गम्य नही हो सकता, वह तो अतीन्द्रिय है। तो अतीन्द्रिय होनेके कारण सब जगह उसकी उपलब्धि नही हो सकती। हम लोकका आकाशका महान परिमाण सब जगह पाया कहाँ जा रहा? इससे यह अनुमान बिल्कुल बाधित हो गया कि आत्मा सर्वगत है क्योंकि इसके गुण सब जगह पाये जाते हैं आकाशकी तरह। इसमें एक शब्द निराकृत कर दिया गया। सर्वगत है यह भी ठीक नही। सर्वत्र उपलभ्यमान गुण है यह भी ठीक नही आकाशकी तरह यह दृष्टान्त भी नही, तो आत्मामें अनुमानसे भी सर्वगतपना सिद्ध न हो सका।

आत्म सर्वगतत्व सिद्धिके लिये शंकाकार प्रस्तुत हेतुकी असिद्धता—जब आत्माके सब जगह गुण नही पाये गए और सर्वव्यापक सिद्ध न हो सका तो आत्माके व्यापक सिद्ध करनेके लिए जो एक अन्य नवीन अनुमान दिया जा रहा है वह भी असिद्ध हो जायगा। शंकाकारका अब सर्वगत सिद्ध करनेके लिए अन्य अनुमान है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बुद्धिका आधारभूत द्रव्य सर्वगत् हुआ करता है, क्योंकि नित्य होनेपर हम लोगोंके द्वारा उपलभ्यमाण गुणका अधिष्ठान है। हेतुका निष्कर्ष यह है कि आत्मा नित्य है और आत्माका गुण जो बुद्धि है वह बुद्धि गुण हम सब लोगोंके द्वारा जाना जा रहा है, उस बुद्धि गुणकी हम सबको उपलब्धि हो रही है ऐसी बुद्धिका अधिष्ठान है आत्मा, इस कारण आत्मा व्यापक है। इसका सीधा संक्षिप्त मत यह हुआ कि जिसमें बुद्धि पायी जाती है वह द्रव्य सर्वव्यापी हुआ करता है। यह अनुमान भी प्रकट खण्डित है क्योंकि दृष्टान्तमें साधन नही पाया जा रहा। दृष्टान्त दिया गया आकाशका। हेतु बताया गया है नित्य होनेपर हम लोगोंके द्वारा पाये जाने वाले गुणका आधार होने से। अर्थात् जिन गुणोंको हम समझ सकते हैं उनका तो हो आधार और साथ हीं हो नित्य। तो जो नित्य हो और हम लोगोंके द्वारा पाये जाने वाले गुणोंका आधारभूत हो वह व्यापक हुआ करता है। दृष्टान्त दिया आकाशका, तो आकाशका कोई गुण हम लोगोंको विदित नही हो रहा। तो "हम लोगोंको जो जाननेमें आये ऐसे गुणोंका आधार होनेसे" यह हेतु आकाशमें नही पाया जारहा।

आत्मव्यापकत्वकी सिद्धिके लिये शङ्काकारप्रस्तुत हेतुकी अनेकांतिता

आत्माको सर्वगत सिद्ध करनेके लिये प्रसक्त हेतुका दृष्टान्त साधनविकल तो है ही, साथ ही यह हेतु अनेकान्तिक दोषसे दूषित है। अनेकान्त दोष उसे कहते हैं कि कुछ दृष्टान्त ऐसे मिल जायें कि जिनमें हेतु तो पाया जाय और साध्य न पाया जाय? तो वह व्यभिचारी हेतु कहलाता है। जो बात सिद्ध करना है उसकी सिद्धि करनेके लिये जो हेतु दिया है वह हेतु अगर साध्यसे विपरीत अर्थको सिद्ध करने लगे तो व्यभिचारी कहलाता है। आपका हेतु है जो नित्य हो और जिसके गुण हम जानते हों, वह व्यापक होता है लेकिन परमाणु नित्य है। और परमाणुवोंका गुण हम जानते हैं, लेकिन परमाणु नित्य है और परमाणुवोंका गुण हम जानते हैं, लेकिन वह व्यापक नही है। हेतु पाया गया, साध्य नही पाया गया तो वह व्यभिचार कहलाता है। परमाणुका कौनसा गुण हम आप लोगोंको जाननेमें आ रहा? उस गुणको कहेंगे पाकज गुण। परमाणुवोंके संयोगसे स्कंधोंमें जो परिणाम बनता है, बिगड़ना, नष्ट होना, शीर्ण होना आदिक, ये सब गुण यदि परमाणुमें न होते तो ये भी हमको कैसे दिखते? तो उन गुणोंके पाये जानेपर भी और नित्य होनेपर भी परमाणु व्यापक नही है। इससे यह अनुमान देना गलत हो गया कि जो बुद्धिका आधारभूत द्रव्य हो वह व्यापक है, क्योंकि नित्य होनेपर हम लोगोंके द्वारा ज्ञान गुणका आधार होनेसे। यदि कहो कि परमाणुके पाकज गुण हम लोगोंके प्रत्यक्षमें नही आ रहे तो किसी तरह साध्य इन्द्रिय द्वारा स्पष्ट तौरसे प्रत्यक्षमें न आ सके और उसे न मानोगे तो आपका यह अनुमान भी गलत हो जायगा जो अन्य प्रसङ्गमें कहते थे कि पर्वत, नदी, पृथ्वी आदिक किसी कारणपूर्वक हैं क्योंकि कार्य होनेसे। तो उनका कार्यपना या कारणकी उपलब्धि ये प्रत्यक्ष ही नहीं हैं तो व्याप्ति नही बन सकती। इससे यह दोष देना कि जो नित्य होने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर ज्ञात गुणका आधार होता है वह व्यापक होता है, यह अनुमान गलत होगा। यदि कहो कि हम उसमें बाह्य इन्द्रिय और जोड़ देंगे जो नित्य होनेपर हम लोगोंके बाह्य इन्द्रिय द्वारा ज्ञात गुणका आधार हो ? इससे परमाणुके साथ व्यभिचार मिट जायगा, क्योंकि परमाणुके गुण बाह्य इन्द्रियोंसे नही जाने जाते। तो भाई ! बुद्धि भी तो बाह्य इन्द्रियसे नही जानी जाती। यों तो तुम्हारी प्रकृत बातमें ही झगड़ा पड़ गया। जब बुद्धि बाह्य इन्द्रियके द्वारा अज्ञात है तो हेतु ही नही पाया गया फिर साध्य क्या सिद्ध करोगे ? और फिर यह बतलाओ कि आत्माको जो नित्य मान रहे हो सो कथंचित् नित्य कहते हो या सर्वथा नित्य कहते हो ? यदि सर्वथा नित्य कहते हो तो घट पट आदिक पदार्थोंके साथ हेतु व्यभिचरित हो जाता है। देखो ! घट आदिक पदार्थ कथंचित् नित्य हैं और हम लोगोंके द्वारा उसके गुण पाये जा रहे हैं, लेकिन व्यापक कहाँ है ? यदि कहो कि सर्वथा नित्य कहा है आत्माको तो सर्वथा नित्य तो कुछ होता ही नही है। तो आपका यह हेतु ही सिद्ध नही हो रहा, फिर उस हेतुके द्वारा आत्माको व्यापक सिद्ध करनेका प्रयत्न व्यर्थ है।

आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करनेका शंकाकार द्वारा प्रस्तुत अन्य अनुमान—अब शंकाकार कहता है कि आत्मा सर्वव्यापक है, इसका साधक हमारा अन्य और अनुमान सुनो क्योंकि द्रव्य होनेपर अमूर्त है। जो जो पदार्थ द्रव्य और अमूर्त हो वह सर्वव्यापक होता है। शंकाकार आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करनेके लिए यह हेतुका समर्थन कर रहा है कि देखो हमारे हेतुमें दो अंग है द्रव्य होना और अमूर्त होना जिसमें द्रव्यत्व व अमूर्तत्व दोनों हों तो वह सर्वव्यापक है। यदि हम केवल उसे केवल द्रव्य कहते तो उसमें दोष आता है, यदि कहते कि आत्मा सर्वव्यापक है द्रव्य होनेसे तो द्रव्य तो घट भी है, पृथ्वी, पहाड़ आदिक है लेकिन ये तो सर्वव्यापक नही हैं। तो उसके साथ हमने अमूर्त शब्द लगाया। ये घट पट पर्वत आदिक अमूर्त तो नहीं हैं इस लिए इनके साथ दोष न लगेगा। और, यदि हम कहते कि आत्मा सर्वव्यापक है अमूर्त होनेसे, तो इसमें यह दोष दिया जा सकता था कि अमूर्त तो रूप, रस, गंध, स्पर्श भी है। रूप आदिक गुण अमूर्त हैं या गमन आदिक जो कर्म है, क्रिया है वह क्रिया भी अमूर्त है, लेकिन सर्वव्यापक तो नही। इस कारण हेतुमें दो बातें कही हैं जो द्रव्य हो और अमूर्त हो वह सर्वव्यापक होता है। जैसे कि आकाश। आकाश द्रव्य है और अमूर्त है, इसलिए सर्वव्यापक है ना। तो यों आत्मा भी अमूर्त और द्रव्य होनेके कारण सर्वव्यापक हो जायगा।

रूपादिमत्त्वलक्षण मूर्तिके अभावको अमूर्त कहनेके विकल्पका निराकरण—अब इसका उत्तर देते हैं कि जो यह हेतु दे रहे हो कि आत्मा द्रव्य है और अमूर्त है इस कारण सर्वव्यापक है तो इसमें अमूर्त शब्दका अर्थ क्या होगा ? अमूर्तका अर्थ तो यह है कि जो मूर्त न हो। और, मूर्तका क्या अर्थ है ? जिसके निषेधको अमूर्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा गया। पहिले मूर्त शब्दका ही अर्थ ठीक बना लीजिए। क्या मूर्तका यह अर्थ है रूपादिमान होना अथवा अव्यापी द्रव्यके परिमाण होना ? जैसे मूर्तका निषेध करके सिद्ध कर रहे हो कि आत्मा अमूर्त है तो जिस मूर्तपनेके अभावको अमूर्त कहते उस मूर्तिकपनेका अर्थ क्या है ? क्या रूपादिमान होना अथवा अव्यापी अर्थके बराबर होना? यदि कहो कि रागादिमान होनेको हम मूर्तिक कहते हैं और फिर उस मूर्तिकता के अभावको हम अमूर्त कहते हैं याने जो रूपादिक मान न हो वह है अमूर्त और अमूर्तका दिया है हेतु तो इस हेतुका मनके साथ अनैकान्तिक दोष आता है, अर्थात् देखो मन द्रव्य है और अमूर्त भी है याने रूपादिमान नहीं है, वैशेषिक सिद्धान्तमें रूप, रस, गंध, स्पर्शके आधार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु हैं और किसी भी पदार्थमें रूपादिक नहीं पाये जाते, इन चार पदार्थोंके अलावा है यह मन नामका द्रव्य। इस मनमें रूपादिमयता नहीं है तो अमूर्त है मन और नित्य भी माना गया है, लेकिन व्यापक है नहीं इससे मूर्तत्वका अर्थ यह नहीं कर सकते कि जो रूपादिक वाले हों सो मूर्त हैं।

असर्वगत द्रव्य परिमाणभाव लक्षण मूर्तत्वके अभावके विकल्पका निराकरण - यदि दूसरा पक्ष लोगे कि जो असर्वगत है उस द्रव्यके बराबर होना सो मूर्त है। घट पट आदिक ये असर्वगत द्रव्य हैं, अव्यापी द्रव्य हैं. थोड़े-थोड़े क्षेत्रमें रहने वाले पदार्थ हैं। उन द्रव्योंके परिमाण रहने वालेका नाम मूर्तिक है ऐसी मूर्तिक अभाव होनेका नाम अमूर्तत्व है. ऐसा यदि कहते हो तो जरा कोई द्रव्य ऐसा तो बताओ जो आपके यहाँ प्रसिद्ध हो और जिसके परिमाण होनेका नाम मूर्ति कहा जाय। शंकाकार कहता है हाँ लीजिए दृष्टान्त। घट पट आदि है, देखो ना घड़ा असर्वगत है, छोटे बड़े फिट डेढ़ फिटके घड़े हुआ करते हैं, तो अव्यापी है ना, सारे आकाशमें घडा फैला नहीं और उसके परिमाण बराबर पदार्थको हम घड़ा कहते हैं, तो यह तो मूर्तिक है। कहते हैं कि कैसे तुमने झट जान लिया कि घड़ा जो है वह अव्यापी द्रव्यके बराबर है याने प्राय: फुट डेढ़ फुटके घेरेके परिमाण वाले हैं तुमने कैसे जान लिया ? शंकाकार कहता है कि इसके जाननेमें कोई कठिनाई है क्या ? सामने तो दिख रहे हैं। अव्यापी है घड़ा और उस हीके परिमाणमें घड़ा है उससे दूर है नहीं. सो यह तो स्पष्ट नजर आ रहा है। ऐसे ही उपलब्धि हो रही है कि घड़ा अव्यापी द्रव्यके परिमाण है, ऐसा पाया जा रहा है। तो उत्तरमें कह रहे हैं कि अब इस बातपर डटे रहना कि जिसे पाया जाय, जो उपलब्ध है, वही प्रमाण है। आपको यह मंजूर है ना कि उस प्रकारकी उपलब्धि प्रमाण है। शंकाकार कहता है हाँ हाँ बराबर यह बात प्रमाणभूत है। जिसे पाया जाय वह प्रमाण हुआ करता है। तो कहते हैं कि घड़ेकी तरह आत्मामें भी असर्वगतपना स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे सिद्ध है। आत्मा भी अव्यापी देहके प्रमाण पाया जा रहा है और इस कारण आपका अमूर्तत्व हेतु असिद्ध हो गया। क्योंकि अब आपका आत्मा मूर्त बन गया ना ? यहाँ मूर्तिका लक्षण इतना भर किया है शंकाकारने कि जो अव्यापी द्रव्यके बराबर हो उसको मूर्त कहते हैं। अब अव्यापी द्रव्यके शरीरके बराबर आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पाया जाता है। सभी सम्वेदन प्रत्यक्षसे बराबर ज्ञात है सो वह मूर्त बन गया। तुम्हारा हेतु ही असिद्ध हो गया और जब मूर्त हेतु होनेसे असर्वगत सिद्ध होता है तो आत्मा अब सर्वगत सिद्ध नही होता, अन्यथा हम कह बैठेंगे कि घड़ा भी हमारा सर्वव्यापी है। जितना आकाश है समस्त आकाशमें फैला हुआ हमारा घड़ा है, क्योंकि घड़ा द्रव्य है और अमूर्त है। आप कहेंगे कि तुम्हारे पक्षमें तो प्रत्यक्षसे बाधा है। घड़ा कहाँ है अमूर्त? अमूर्तका यहाँ अर्थ किया जा रहा है असर्वगत द्रव्यके परिमाण न रहना। अव्यापी द्रव्यके परिमाण रहनेका नाम मूर्ति है। ऐसा मूर्तिका लक्षण हृदयमें रखकर अमूर्त कहा जा रहा है सो वह जाना ही नही जा रहा। यदि घटमें बाधा आती है तो आत्मामें भी बाधा आती है। इसमें आत्माको अमूर्त सिद्ध करना ही कठिन हो रहा मूर्तिका अभाव है यह सिद्ध नही हो पा रहा। न तो रूपादिमानका नाम मूर्ति रहा और न असर्वगत द्रव्यके परिमाण रहनेका नाम मूर्तिक रहा तो आपके अनुमानमें अभी हेतु ही असिद्ध है उसे पहिले सिद्ध कीजिये।

असर्वगत द्रव्यपरिमाणरूप मूर्तत्वका निषेध करके आत्माको अमूर्त सिद्ध करनेकी शङ्काकारकी कठिनाइयाँ—शङ्काकार आत्माको आकाशकी तरह सर्वव्यापी माननेके लिये हेतु दे रहा था कि द्रव्य है और अमूर्त है इस कारण आत्मा सर्वव्यापक है। इसमें अमूर्त शब्दपर बहस चल रही है और बहस चलते-चलते यहाँ तक नौबत आई कि शङ्काकारको अमूर्त सिद्ध करना भी कठिन हो गया। आत्मा अमूर्त है, इसका अर्थ क्या है? क्या अव्यापी अर्थात् थोड़ीसी जगहमें रहने वाले द्रव्य के बराबर रहनेका नाम अमूर्त है? इस द्वितीय विकल्पकी मीमांसा हो रही है और इसी प्रसङ्ग में शंकाकार द्वारा घटकी तरह आत्मा अमूर्त सिद्ध नही हो पा रहा असर्वगत द्रव्यपरिमाणलक्षण मूर्तत्वके अभावके विकल्पमें जैसे घट अमूर्त नही है इस तरह आत्मा भी अमूर्त नही है, मूल विचारसे तो अमूर्त ठीक सिद्ध होता है कि वह भी देह प्रमाण है, पर देह प्रमाणके नातेसे तो अमूर्त नही कहा गया, लेकिन दार्शनिक पद्धति में तत्काल जो दोष मिले वह दिया जाता है। यहाँ शंकाकार कहता है कि आत्मा सर्वगत है, सर्वव्यापी है इसलिए वहाँ अमूर्तपना हो बन जाता है पर घट आदिकमें अमूर्तपना नही होता। घट मूर्तिक है, क्योंकि वह सर्वव्यापक नही। जो सर्वव्यापक हो वही अमूर्त होता है। अब देखिये उत्तरमें आत्माको सर्वव्यापी सिद्ध करनेके लिए तो अमूर्तका हेतु देना पड़ा कि आत्मा अमूर्त है इस कारण सर्वव्यापक है और अब आत्मा को अमूर्त सिद्ध करनेके लिए सर्वव्यापक हेतु दे रहे हो कि चूंकि आत्मा सर्वव्यापक है इसलिए अमूर्त है, तो ऐसी कठिन परिस्थितिमें यह बतलावो कि आत्माके सर्वगतपना किस तरह सिद्ध है? क्या अन्य हेतुसे या इस ही हेतुसे? यदि अन्य हेतुसे कहीं तो उसी हेतुसे आत्माको सर्वव्यापी सिद्ध कर लोगे' फिर यह हेतु देनेकी क्या जरूरत है कि चूंकि आत्मा द्रव्य है और अमूर्त है इस कारण सर्वव्यापी है। यदि कहो कि इस ही हेतुसे हम आत्माको सर्वगत सिद्ध करेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा। जब आत्मा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वव्यापी सिद्ध हो ले तब तो अमूर्त सिद्ध हो। अमूर्तके मायने मुर्तपना नही होना। मूर्तपनाके मायने अव्यापी द्रव्यके बराबर सम्बंध वाला न होना। ऐसा अमूर्तपना तब सिद्ध हो जब आत्मा सर्वव्यापी सिद्ध हो ले। और आत्मा अमूर्त सिद्ध हो ले तब आत्मा सर्वव्यापी सिद्ध हो इस कारण यह अनुमान करना कि आत्मा सारे जहानमें एक व्यापक है क्योंकि वह द्रव्य है और अमूर्त है।

अमूर्तत्वके अर्थमें दो विकल्प—शंकाकारके अनुमानमें अभी अमूर्तत्वात् इस ही हेतुको छेड़ा जा रहा है अमूर्त है आत्मा, इसका क्या अर्थ करोगे? जिस चीजमें पहिले अ लगा रहता है उसके दो प्रकारके भाव हो जाया करते हैं। जैसे—अमनुष्य, मनुष्य मायने तो मनुष्य और अमनुष्यके दो अर्थ हो जायेंगे मनुष्य नही किन्तु और कुछ, एक तो यह अर्थ हो जाता है और एक यह अर्थ है—मनुष्य नही। इससे आगे और कुछ नही सोचा जा रहा है। अ मायने नही, मनुष्य मायने मनुष्य, अमनुष्य मायने मनुष्य नही अर्थात् मनुष्यका अभाव, तुच्छाभाव अर्थात् मनुष्यका निषेध करके उसके एवजमें और कुछ न देखना, इसे कहते हैं प्रसज्यप्रतिषेध। याने जो बात प्रसङ्गमें थी उसका निषेध कर लिया केवल और अमनुष्यका दूसरा अर्थ यह है कि गाय, बैल, घोड़ा वगैरह सारी चीजें। याने मनुष्य तो नही, किन्तु मनुष्यको छोड़ कर बाकी सारी चीजें। तो अमूर्तके भी दो अर्थ हैं—अ मायने नही, मूर्त मायने मूर्त, मूर्तिक न होना, इसके आगे और कुछ नही सोचा जा रहा। मूर्तका अत्यन्ताभाव। तो इस विकल्पमें सत् बनानेकी बात हो नही है और एक अमूर्तका अर्थ यह होता—मूर्त नही किन्तु इस प्रकार अन्य कुछ। तो तुम अमूर्तका अर्थ क्या करते हो—क्या प्रसज्य प्रतिषेध अथवा पर्युदास? प्रसज्यप्रतिषेधका अर्थ है कुछ नही, तुच्छ अभाव, मनुष्य नही। पर्युदासका अर्थ है—प्रसक्त तो नही, किन्तु और कुछ। इनमेंसे पहिली बात तो युक्त है नहीं, याने आत्मा अमूर्त है इसका अर्थ केवल इतना ही लगाना कि मूर्त नही। अर्थात् गाँठमें और कुछ बात नही, कोई सत्त्व नही, किन्तु अभाव।

मूर्तिके तुच्छ अभावरूप अमूर्तत्वका निराकरण—यदि मूर्तिके अभावका तुच्छ अभाव अर्थ करते हो अमूर्त कहकर कि मूर्तका तुच्छ अभाव है तो पहिले तो यह जानो कि तुच्छ अभाव कोई चीज नहीं होती। काल्पनिक अथवा मात्र कहनेमें आरहा है जैसे गधेके सींग तुच्छ अभाव है, कुछ चीज नहीं है। गधेके सींगका अभाव बताओ, यह तुच्छ अभाव है ना! सींग अगर गधेके हुआ करते होते तो फिर न होनेसे मना करते! तो उसके एवजमें कोई चीज बताई जा सकती थी। अब जो चीज ही नहीं है उसका नाम लेकर उसका अभाव कहना इसका तो कुछ अर्थ ही नही। जैसे कहा—घड़ीका अभाव। कमरेमें देखा तो घड़ी मिली नही, तो कहा कि हम अच्छी तरह घड़ी का अभाव देख आये! अच्छा, घड़ोका अभाव आप किस नजरसे देख आये? अजी, बिल्कुल खास चक्षु इन्द्रियसे देखकर आये? अब चक्षु इन्द्रियसे घड़ीका अभाव दीख

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया । यों घड़ी हुआ करती है कुछ, यह आया ज्ञानमें और उसके अभावसे विशिष्ट हमने सारा कमरा, जमीन, फर्श, बेन्च आदिक सब देख डाले, यह उसका अर्थ हुआ। घटाभाव विशिष्ट पृथ्वीका अर्थ है कि घट नहीं है, पर घट कोई चीज होती है तब उसके न होनेपर उसके एवजमें कुछ भाव बताया जाता है, पर जो चीज नहीं है उसको क्या बताया जाय ? और बताया जायगा तो पशुदास आ जायगा। सींग तो कुछ होते ही हैं, अब उनको हम गधेपर देखना चाह रहे तो सींगके अभावसे विशिष्ट जो गधेका सिर है वहाँ ही सींगका अभाव है। तुच्छाभाव तो कुछ चीज नहीं है। तुच्छाभाव मान भी लें तो उसको जाननेका कोई उपाय नहीं है इसलिए अज्ञाता सिद्ध हेतु हो गया यह कि आत्मा सर्वव्यापक है अमूर्त होनेसे। तो अमूर्तका अर्थ क्या है ? मूर्तका तुच्छाभाव। उसका हम ज्ञान नहीं कर पाते तो हेतु अज्ञात रहा ना। तो अज्ञात रहनेसे हेतु असिद्ध हो गया अन्यथा बतलावो कि मूर्तके अभावके तुच्छाभावको जाननेका उपाय क्या है ? देखिये ये सब बातें अपनी चल रही हैं। आत्माके बारेमें यह पूछा जा रहा है वैशेषिकसे शंकाकारसे कि तुम जो आत्माको अमूर्त कहते हो तो उस अमूर्तका अर्थ क्या है ?

अमूर्तत्वके यथार्थ परिचयका महत्त्व – इस प्रसंगमें पहिले स्याद्वाद सम्बन्धित अमूर्तका अर्थ कुछ समझ लीजिए। अमूर्तका अर्थ है रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक का न होना, और मूर्तका अर्थ है रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिकका होना। तो रूप, रस, गंध, स्पर्शका न होना यह अमूर्तपना तुच्छाभाव रूप नहीं है। किन्तु चैतन्य स्वरूपात्मक जो प्रदेश है वह प्रदेश है मूर्तके अभाव रूप। एक अभाव दूसरेके सद्भावरूप हुआ करता है। एक अमूर्तका हम पहिले अपने ज्ञानसे विवेकसे जान सकते हैं और आत्मा को जाननेके लिए दो बातें खास महत्त्वकी सहयोगी हैं एक अमूर्तता, दूसरी—प्रतिभास मात्र। आत्माको इन दो रूपोंसे अंतर ग्रहणमें के ज्ञान द्वारा कि मैं अमूर्त हूं, रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला नहीं हूं। इस मूर्तासे रहित, किन्तु वास्तविक. जिसमें कि जाननेकी अर्थ क्रिया हो रही है, बहुत बड़ा काम चल रहा है जाननेका। जानन बिना एक समय भी नहीं ठहरता। ऐसा जाननका आधारभूत एक परमार्थ सत् पदार्थ जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं, ऐसा मैं अमूर्त आत्मा हूं। यों अमूर्तपनेका ज्ञान करते हुए मोह अहंकार ये सब झंझट समाप्त होते हैं। देखिये अमूर्तत्वका परिचय एक बहुत महत्त्वका परिचय है। यह मैं अमूर्त हूँ इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श शब्द कुछ नहीं है। इसे कोई स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु, श्रोत्रसे जान सकता नहीं। अमूर्त हूँ। जब इस मुक्त अमूर्त आत्माका किसी दूसरेसे भिड़ाव भी नहीं बन सकता लगाव भी नहीं बन सकता तब इस लोकमें मेरे अमूर्त आत्माका मेरे ही स्वरूपको छोड़कर और क्या रखा है ? आत्माके अमूर्तत्वपर दृष्टि जाने देनेसे अहंकार ममकार कैसे ध्वस्त हो जाते हैं कि इस दोषके दूर होनेमें विलम्ब नहीं लगता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मूर्त देहसे निराले अमूर्त आत्माका विवेचन मैं अमूर्त हूँ, देह भी मैं नही रहा। देह मूर्तिक है; देहमे जानने देखनेकी कला नही है। देह तो हाड़ मांस आदिक अपवित्र पदार्थोंका पिण्ड है। और, फिर इस अमूर्त मुझ आत्माके चले जानेके बाद इस देहसे कोई रंच भी प्यार नही करता। खूब देख डालो—कोई शरीरसे प्रेम करता हो तो बताओ? प्रेमकी बात तो दूर जाने दो, उस शरीरके पास पहुँचनेका भी साहस मुश्किलसे होता है। क्या हो गया? वही तो शरीर है जिसे परिजन लोग नहलाते थे, कपड़े पहिनाते थे, शैयापर सुलाते थे खाने पीनेकी बहुत पूछ करते थे? परिचय भी शरीर ही शरीरसे था, आत्माको समझाने वाला कौन था? क्या हो गया अब कि इस अमूर्त आत्माके निकल जानेके बाद इस शरीरके निकट भी कोई आना नही चाहता, इसे ग्लानिके योग्य समझा, भयावह समझा, विरक्तिका करने वाला समझा। देर तक पड़ा रहे तो रोगका फैलाने वाला समझा। कितना ही किसीसे प्रेम हो शरीरसे कोई प्रेम नही रखता। यह शरीर मुक्त अमूर्त आत्माका कुछ भी नही लगता।

आत्माकी व्यापकतापर विचार—देखिये! इस प्रसङ्गमें भी मोटे रूपसे यह समझ लीजिए कि आत्मा तो सर्वव्यापक है फिर मरण किसका? जहाँ शरीर है वहाँ आत्मा रह तो रहा ही है, मरण किस चीजका नाम है? देहप्रमाण आत्मा जब कभी आयुके क्षयसे देहको छोड़कर चला जाता है उसको मरण कहते हैं, जिसे कुछ विद्वान् दार्शनिक लोग आत्माको सर्वव्यापक कहते हैं, उसे इस विधिसे देखो कि हम आप सब आत्माओंमें जो स्वभाव है, स्वरूप है, चैतन्य है उसको निरखिये! और केवल चैतन्यस्वरूप स्वरूपको ही देखते रहिये! उस निरखनमें न तो आपका व्यक्तित्व रहेगा और न किसी अन्यका व्यक्तित्व रहेगा। एक चैतन्यस्वरूप ही दृष्टिगत होगा। तब वह व्यापक रहा कि न रहा? जिसकी कुछ खबर ही नहीं हो सकती कि कितना व्यापक रहा? जिसकी कुछ खबर ही नही हो सकती कि कितना व्यापक! केवल चैतन्यस्वरूपको दृष्टिमें रखकर जो भाव बनता है, जो दर्शन होता है, केवल चैतन्य ज्योतिके उस दर्शनमें यह खबर नही है। उसकी दृष्टिमें तो चैतन्यरस ऐसा लबालब भरा पड़ा है कि वह तो व्यापक ही है। अव्यापक कहनेमें दोष है, क्योंकि उसमें सीमा पायी जाती है। व्यापक कहनेमें हमें सीमाकी सुध लेनेकी आवश्यकता ही नहीं है। यों समाधि भावमें रहने वाले योगी ज्ञानी सम्यग्दृष्टियोंकी समझमें व्यापक है चित्स्वभाव, किन्तु उसे साधारण जनोंके प्रति सर्वथा आत्मा सर्वव्यापक है ऐसा कह दिया जाय प्रसिद्ध तो फल इसका यह होता कि जैसे लोग घट पट आदिक पदार्थोंको देखते हैं, इस तरह आत्माको भी देखकर व्यापक मानना चाहते हैं, तो आप समझ लीजिये कि अपने आपको अमूर्त सोचनेका कितना शान्तिप्रद परिणाम निकलता है।

अमूर्तत्वकी झलकसे अनुभवमें प्रगति—मैं अमूर्त हूं, इन्द्रियका व्यापार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बन्द किया, चक्षु इन्द्रियको संयत किया, बन्द किया, अन्य सब इन्द्रियोंकी रोक-थाम की और अन्त: निरखा अमूर्त। किसीसे छुवा भी नही जाता, किसीसे मिला भी नही जाता, कोई उसमें पहिचान भी नही डाल सकता कि इन आत्माओंमेंसे यह आत्मा है मेरा। ऐसा सर्वसाधारण ज्ञानदर्शनसामान्यात्मक चैतन्यस्वरूप अमूर्त आत्मा हूँ इसका कहाँ सम्बन्ध है ? कहाँ घर है ? उसका विहार तो विकारदशामें तीन लोकमें होता। घर कहाँ चिपटेगा ? मुक्त होऊँगा तो ज्ञानबलसे तीन लोकका अधिपति होऊँगा और तब सब ज्ञेयमात्र रहेगा। घर कुटुम्बका जो स्नेह है लगाव है बन्धन है, यही सारी ओट है, जिससे इस प्रभुके दर्शन नही होते, इसके लिए कि हमें अपने उस अमूर्त प्रभु-स्वरूपके दर्शन हो जायें बड़ा पुरुषार्थ करना है, बहुत अभ्यास करना है, बहुत लगाव रखना है स्वभावमें, उपयोगको अधिकाधिक बसाना है स्वरूपमें, तब परमात्मपदका विकास होगा, सदाके लिए हम सुखी हो जायेंगे।

ज्ञानसत्सङ्गकी अत्यावश्यकता यहाँ थोड़ी थोड़ी देरको कल्पित सुखी होनेके लिए विषयप्रसंगोंमें अथवा पौद्गलिक ढेरके साधनोंमें लगें तो इसका फल क्या है ? न ये रहेंगे न हम आबाद रह सकते हैं। ये बाह्य समागम भी न रह सकेंगे और हम भी बरबाद हो जायेंगे, यह स्थिति है। तथ्यभूत अन्तस्तत्त्वके रुचिया ज्ञानी लोकमें बिरले पाये जाते हैं, पर हम जब बहुत सुगम पाये जाने वाले मोहियोंमें अधिक बसते हैं तो उस विकल्प कलंकके कारण आत्मासे लगाव रखनेकी हमारी प्रवृत्ति नही बन पाती। इसके लिये उन विरले ज्ञानी सतजनोंका अथवा परमात्मस्वरूपका परमात्म-स्वरूपके प्रति जिनप्रतिमा आदिकका स्वाध्यायका हमें आलम्बन अधिक लेना है, तब हमारा यह परमार्थ वास्तविक अन्त:प्रमाण प्रभुदर्शन दे सकेगा, इन बाह्य पदार्थोंका लगाव हट सकेगा। यहाँ हम आप लोगोंको मूर्खपनेपर मजाक करने वाला भी कोई नही मिल रहा। मिले कैसे ? जब सभी उस परतत्त्वमें वैभवमें रुचि रख रहे हैं तो फिर मजाक करने वाला कौन ? पर मजाकके योग्य हैं ये बहुत क्योंकि जड़ कुछ नहीं, सार कुछ नही, तत्त्व कुछ नही, पर उपयोगमें विकल्पमें वही सारी माया, वही सारा लोक, वही सारी मायारूप। इसे सब कुछ नजर आ रहे हैं। इस अध्यात्मकी जब तक प्रधानता नही होती, इनके रुचिया लोग जब तक अधिक न बन जायेंगे तब तक देशमें भी शान्ति नहीं रह सकता। अशान्त वातावरण रहेगा। तो अपने आपको अमूर्तरूपसे निरखनेका कितना जबरदस्त सुखमय चित्तमय प्रभाव पड़ता है, एक झलकमें, एक झटकमें सबसे छुटकर दृष्टिपात तो ले लें कि यह मैं अमूर्त हूँ।

चित्स्वरूपमें उपयोगकी समाईका उद्यमन इस अमूर्त अन्तस्तत्त्वके परिचयका इतना विशेष महत्त्व है, लेकिन इस अमूर्त आत्माको सर्वव्यापकमान लेनेके कारण दृष्टि हमारी उतनी लम्बी बन गयी, व्यग्र हो गई आकाररूपसे बँधगई कि उस चित्स्वरूपका लगाव मिट जाता है, सुध हो नही पाती है। एक तो सर्वव्यापिनी दृष्टि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनानेसे यह हानि है। फिर दूसरी बात हम हम ही में समा जायें, विलीन हो जायें इसका अवसर नही रहता। इसका अवसर तब होता है कि मैं अपने आपको चित्स्वरूप मात्र तकता रहूँ। कितना बड़ा है उसके प्रश्नमें हो न फसूँ केवल मैं चित्स्वरूप हूँ। अब होगा क्या ? यहाँ दो बातें रह गयी उपयोग और चित्स्वरूप। देखिये ! यहाँ भी दो बातें भिन्न–भिन्न नही है। भिन्न–भिन्न हों तो समानेकी बात त्रिकाल भी नही बन सकती। हमारा उपयोग, ज्ञान चित्स्वभावमें समा जाय यह बात कभी न बन सकेगी। क्योंकि स्वभाव और उपयोग को भिन्न-भिन्न वस्तु मान लिया गया। जलमें कंकड़े कहाँ समाता है ? आप उत्तर देंगे कि जलसे भरे लोटे में कंकड़ डाल दिया तो कंकड जलमें समा तो गया। अरे नही समाया। वहां भी कंकड़ में जल नहीं, जलमें कंकड़ नहीं। खूब परखलो। दो वस्तुवोंका कितना ही घनिष्ट मेल हो जाय, पर समाना हो ही नहीं सकता। आप कहेंगे कि किसी कनस्तरमें खूब राख भरी है और उसमें पानी डाला जाता है तो १०–१२ सेर पानी भी समा जाता है। तो समा जाने दो, इतने पर भी राखमें राख है और पानीमें पानी है। वे दोनों एक दूसरेमें समा नहीं सकते, क्योंकि वे दो पिण्ड हैं। यों उपभोग और आत्मस्वभाव दो पदार्थ होते तो स्वभावमें उपयोगके समानेकी बात बन ही नहीं सकती थी। अतएव चित्स्वभाव व उपयोग भिन्न पदार्थ नहीं, किन्तु चैतन्य स्वभावकी वृत्ति ही उपयोग है और वह उपयोग बाह्यकी ओर लगा हुआ है। उसे आत्माकी ओर अभिमुख करते हैं तब यह उपयोग स्वभावमें समा जायगा।

स्वरूपमें उपयोगकी समाईका आनन्द –उपयोग स्वभावमें समा जाय, इससे बढ़कर लोकमें कुछ काम ही नही। जैसे अन्य परिवारमें अन्य देशवासियोंमें ये मेरे नही हैं, ऐसी बुद्धि बनानेसे हमें उनकी ओरसे कोई क्लेश नही। क्लेश है हमें उनकी ओरसे जिनको हम समझते हैं कि ये मेरे हैं। यदि वह उपयोगकी समाई स्वभावमें आ जाय तो जैसे हम उन गैरोंको भिन्न मानकर सुखी हो रहे थे वैसे ही अब सबको भिन्न समझ गए, कुटुम्ब आदिककी भी खबर न रहे किसीके प्रति मेरेपनकी कल्पना न बने, तो उपयोगमें ऐसा समानेकी स्थितिमें संकट क्या रहा ? यह बात जिस किसी भी क्षण प्राप्त होनेको हो तो थोड़ासा और झुकाव लगावो कि एकबार तो झलकमें वह स्थिति हमारी प्राप्त हो जाय। इन सब प्रगतियोंके लिए आत्माको अमूर्त चिन्तन करना कितना लाभदायक है ? सोच लीजिये ! एक बहुत बड़ा झटका लगाना है दुनियासे अलग होनेका। मैं अमूर्त हूँ, जिस किसीसे आशा लग रही हो अनेक पुरुषोंसे वे अनेक पुरुष आकर उसकी सेवा करें, सेवा करके हैरान करें, बोलकर हैरान करें, अपना स्नेह दिखाकर हैरान करें कोई धमकी देकर हैरान करें और जब वह पुरुष यह कहदे कि हमें अब कुछ मतलब नहीं, मैं किसीका कुछ नही हूं, मैं किसी की कुछ न सुनूंगा, तो तत्काल ही देखो उनका सताना मिट गया। तो ये समस्त वैभव सम्पदा आदिक हम आपको सता रहे हैं। जिस कालमें सोचें कि मैं तो अमूर्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं तत्काल उनका सताता समाप्त हो जाता है। ऐसा महत्त्वशाली अमूर्त शब्दपर यह विवाद चल रहा कि सर्वव्यापक आत्मा मानने वाले लोग अमूर्त पहिले सिद्ध करदें। मूर्तका अभाव तुच्छाभाव उसके साथ इन्द्रियका कोई सम्बध नही बनता जिससे कि वह जाना जाता है। मूर्तके तुच्छाभावका ग्रहण करनेका कोई तरीका ही नही होता।

मूर्तिके तुच्छाभावके ग्रहणमें प्रत्यक्षकी अप्रवृत्ति— मूर्तके तुच्छ अभावको अमूर्त कहनेपर यह आपत्ति बतायी जा रही है कि मूर्तका अभाव, तुच्छाभाव किसी प्रमाणसे ज्ञात ही नही होता। प्रत्यक्षसे ज्ञात तो यों नही होता कि प्रत्यक्ष होता है इन्द्रिय और पदार्थमें सन्निकर्षसे उत्पन्न। तो यहाँ पदार्थकी जगह माना है तुच्छाभाव तो तुच्छाभाव साथ न तो मनका सन्निकर्ष है और न अन्य इन्द्रियका सन्निकर्ष है इस कारण प्रत्यक्षके द्वारा मूर्तिका तुच्छाभाव ज्ञात नही हो सकता। शंकाकार कहता है कि तुच्छाभावके साथ मनका सन्निकर्ष इस तरह सम्भव है कि देखो मन तो आत्मासे सम्बद्ध है ना, मन और आत्माका संयोग सम्बन्ध माना है और आत्माका विशेषण है मूर्तिका अभाव। तो अब यहाँपर तुच्छाभावके साथ मनका सम्बद्ध विशेषणभाव नाम का सम्बंध बन गया, अर्थात् मन तो सम्बद्ध आत्मासे और आत्माका विशेषण है मूर्ति का तुच्छाभाव। तो यों मनके साथ तुच्छाभावका विशेषणके माध्यमसे सम्बंध बन गया। समाधानमें कहते हैं कि तुम्हारी बात कुछ कुछ युक्त हो सकती थी जब कि यह तुच्छाभाव आत्माका विशेषण बन जाता, लेकिन तुच्छाभावमें आत्माका विशेषणपना उपपन्न नही है क्योंकि विशेषण जो कुछ भी होता है वह विशेष्यमें विशिष्ट ज्ञान करने का कारणभूत हुआ करता है। जैसे दंड पुरुषका विशेषण है, जो लाठी लेकर चलता है उस पुरुषका विशेषण दंड क्यों हो गया कि दंडके कारण यह दंडी है यह पुरुष दंडे वाला है, इस विशेष बातका ज्ञान बनता है तो विशिष्ट प्रत्यका हेतु होनेसे दंड पुरुषमें विशेषण बन गया। पर यह तुच्छाभाव तो विशिष्ट प्रत्ययका कारण ही नही बन सकता, क्योंकि तुच्छाभावमें कुछ नही ऐसे अभाव मात्रमें कोई भी शक्ति नही पायी जाती। और अगर शक्ति पायी जाय तुच्छाभावमें तो वह तुच्छाभाव कहाँ रहा। भाव-स्वरूप बन गया। जिस जिसमें शक्ति पायी जाय वह तो भावस्वरूप होता, क्योंकि शक्ति पायी गई, अर्थक्रिया होने लगी। अर्थक्रिया होना ही तो परमार्थसत्का लक्षण है, परमार्थ सद्भूत पदार्थका लक्षण अर्थक्रियाकारिताको छोड़कर अन्य कुछ नही हो सकता। कोई यह कहे कि सत्ताके सम्बंध होने रूप लक्षण बन जायगा। पर-मार्थ सत्में सत्ताका सम्बंध होता है सो परमार्थ सत्ताका लक्षण हुआ सत्ता सम्बंध तो उसका उत्तर सुनिये, सत्ता सम्बंधसे सत् होनेकी बात युक्त नही है, क्योंकि सत्ता अलग है, पदार्थ जुदा है और फिर उन दोनोंका सम्बंध बनता है ये सब हेतुकी बातें हैं, जो स्वयं सत् नही है याने असत् है उसमें सत्तासम्बंध कैसा ? यदि असत्में सत्तासम्बंध बने तो सारेविशेषण भी सत्तसम्बन्धित हो जावें।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेष्यमें प्रवृत्तिके लिये विशेषणके ज्ञात होनेकी अनिवार्यता—और भी सुनो ! जो ज्ञात हो वही विशेषण बन सकता है, क्योंकि अज्ञात विशेषण वाली बुद्धि विशेष्यमें प्रवृत्त नहीं होती। जैसे कहा—नील कमल, तो नील ज्ञात हो तब तो कमलका विशेषण बनाया जाय। विशेषणका ज्ञात होना अनिवार्य है। यहाँ बना रहे हो तुच्छाभावको आत्माका विशेषण, सो ज्ञात तो होना चाहिये ना ! यदि कहो कि ज्ञात है तुच्छाभाव तो इतरेतराश्रय दोष होता है। इस तरह कि आत्मासे सम्बद्ध इन्द्रियके द्वारा, मनके द्वारा मूर्तत्वका अभाव जब ज्ञात सिद्ध होने लगे तो आत्माका विशेषण बने, यह तुच्छाभाव और जब मूर्तत्वका अभावरूप तुच्छाभाव आत्माका विशेषण सिद्ध हो ले तो आत्मसम्बद्ध मनके द्वारा तुच्छाभाव ग्रहण सिद्ध हो। यदि कहो कि आत्मा स्वयमेव असर्वगत द्रव्यके परिमाणके सम्बन्धसे रहित सिद्ध है याने आत्मा अव्यापी द्रव्य परिमाण सम्बन्धसे रहित है। तब तो स्वयं ही मान लो आत्मा को सर्वव्यापक। फिर मूर्तत्वका अभाव है, अमूर्त है आदिक विशेषण देनेसे क्या फायदा ? और, यदि कहो कि असर्वगत द्रव्य परिमाणके सम्बन्धसे विकल नहीं है तो फिर उसका अभाव कहाँ रह सका जिससे कि विशेषण बन जाय ! प्रयोजन यह है कि आत्मामें मूर्तत्वका अभाव तुच्छाभावरूप मानो और उस तुच्छाभावको मूर्तत्वके प्रतिषेधको, प्रसज्यप्रतिषेधको आत्माका विशेषण मानो और आत्माका मनसे है सम्बन्ध, तो इस तरह मनके द्वारा यह तुच्छाभाव जान लिया गया यह बात कहो तो ये सारी बातें अयुक्त हैं।

आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणीभाव सम्बन्धके सम्बद्धता की असिद्धि - और, भी सुनो आत्मा और तुच्छाभावका जो विशेषणी भाव सम्बन्ध माना है तो क्या आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणी भाव सम्बन्ध सम्बद्ध है या असम्बद्ध है। यदि कहो कि सम्बद्ध है तो जैसे आत्मामें अमूर्त है इस प्रकारके विशिष्ट विज्ञानका विधान करनेसे आत्माका "मूर्तत्वका अभाव" विशेषण बन गया तो इस प्रकार विशेषणी भाव भी इस विशिष्ट प्रत्ययका जनक बन गया कि आत्मा विशेष्य है और मूर्तत्वका अभाव विशेषण है तो यों विशेषणी भाव सम्बन्ध भी विशेषण बन गया, समवाय वाला बन गया, क्योंकि गुण और गुणीके सम्बन्धको समवाय कहा है। याने अब यह परम्परा बढ़ गयी कि आत्माका विशेषण है मूर्तत्वका अभाव, तुच्छाभाव और और इन दोनोंमें याने विशेष्य विशेषणोंमें है विशेषणी भाव सम्बन्ध सो यों ही विशेष्य विशेषण और विशेषणीभावको भी अब अन्य विशेषण बनेगा क्योंकि आत्माका तुच्छाभावके साथ विशेषणीभाव सम्बन्ध है, इसमें भी विशिष्ट ज्ञान बना तब उसके लिए विशिष्ट ज्ञानका हेतुभूत कोई दूसरा सम्बन्ध मानो, यों अनवस्था दोष आता है।

आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणीभावको असम्बद्ध माननेपर अभीष्टकी असिद्धि—यदि कहो कि आत्मा और तुच्छाभावके साथ विशेषणी भाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्बन्ध असम्बद्ध है तो जब असम्बद्ध है विशेषणी भावना तो विशेषण और विशेष्य रूपसे माने गए आत्मा और तुच्छाभावमें विशेषणी भाव कैसे बन बैठेगा। वह विशेषणी भाव सम्बन्ध आत्मा और तुच्छा भावका है यह कैसे मान लिया जाय ? जिससे कि उस आत्मामें विशिष्ट प्रत्ययका प्रादुर्भाव हो या सम्बन्ध हो। बतलावो कि किस विधिसे यह तुमने जाना कि यह विशेषणी भाव आत्मा और तुच्छा भावका है ? यदि कहो कि विशिष्ट प्रत्ययकी उत्पत्ति होनेसे जाना तब तो ईश्वर, काल आकाश आदिक भी विशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्त कारण कहे तो वे सब भी आत्माके और तुच्छाभावके विशेषणी भाव बन बैठे। तो जब सम्बन्ध नहीं मान रहे विशेषणी भावका आत्मा और तुच्छाभावके साथ तो ये सब आपत्तियाँ आती हैं। यह विशेषणी भाव आत्मा और तुच्छाभावका है, इसके जाननेका अब कोई उपाय नहीं रहा। यदि कहो कि यद्यपि विशेषणी भावका आत्मा और तुच्छाभावके साथ सम्बन्ध नहीं है तो भी कल्पनासे जाना जाता है कि विशेषकी भाव आत्मा और तुच्छाभावका है। तो समाधानमें कहते हैं कि तो भावका अभाव व समवायी दो पदार्थोंका समवाय भी कल्पनासे हुआ मान लो, तब फिर विशेषणीभावकी कल्पना करना व्यर्थ है। तो यों आत्मामें मूर्तत्वके अभावरूप तुच्छाभावको जाननेका उपाय प्रत्यक्ष नहीं बन सकता।

मूर्तत्वके तुच्छाभावका अनुमानसे भी अग्रहण—अब प्रत्यक्षसे आत्मामें मूर्तत्वका अभाव जो कि इस विकल्पमें तुच्छाभाव माना है ज्ञात नहीं हो सकता, तब आत्माके मूर्तभावको अनुमानसे भी नहीं जान सकते, क्योंकि जब प्रत्यक्षसे ही कुछ नहीं जाना गया तो अनुमान कैसे लग सकता है ? कोई बात प्रत्यक्षसे जानी जाय तब अप्रत्यक्ष साध्यकी सिद्धि भी की जा सकेगी। सो जब मूर्तका तुच्छाभाव प्रत्यक्षसे ज्ञात नहीं तो व्याप्ति ही न बन सकेगी, अनुमान क्या बनेगा ? शङ्काकार कहता है कि लो यह है अनुमान। आत्मा अमूर्त है, इस प्रकारकी बुद्धि भिन्न अभाव निमित्तक होती है तुच्छाभाव निमित्तक होती है, क्योंकि अभाव विशेषण वाल भावविषयक बुद्धि होनेसे जैसे भूतल अघट है, घटरहित है, यह बुद्धि भिन्न अभावनिमित्तक है। समाधान करते हैं कि यह भी असार बात है, क्योंकि तुच्छरूप अभावका विशेषणपना ही सिद्ध नहीं हो रहा। अभाव प्रमाणके विचारके समय अभावके हेतु उदाहरण आदिक सभी खण्डित कर दिये गये हैं इसलिये अभाव विषयक कुछ भी सिद्धि नहीं हो सकती। तो यों मूर्तत्वका अभाव प्रसज्यप्रतिषेधरूप न बन सका, जिससे कि अमूर्तत्व हेतु देकर आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध कर सको।

असर्वगत द्रव्यपरिमाण सम्बन्धरूप मूर्तत्वके अभावको पर्युदासरूप होनेकी भी असिद्धि—शंकाकार कहता है तब तो फिर अमूर्त शब्दमें मूर्तके अभाव का अर्थ पर्युदास मान लो अर्थात् मूर्तत्वका अभाव याने अन्यके सद्भाव रूप। उत्तरमें कहते हैं कि पर्युदास माननेपर भी इस विकल्पमें बात नहीं बनती, क्योंकि असर्वगत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य परिमाण सम्बन्धरूप मूर्तपनेसे अन्य जो हो उसे कहा यहाँ अमूर्त सो उसका अर्थ हुआ सर्वगत द्रव्यके परिमाणसे परममहत्त्वसे सम्बन्ध होना सो यह किसी भी प्रमाण से सिद्ध नही है, याने असर्वगत द्रव्यके परिमाण होना ऐसा अमूर्तपना किसी भी परमाणसे सिद्ध नही है इस कारण आपका हेतु असिद्ध है और यह अनुमान फिर इस हेतुसे बन ही नही सकता कि आत्मा सर्वगत है क्योंकि अमूर्त होनेसे।

आत्माको सर्वगत सिद्ध करनेके लिये शंकाकारका अन्तिम अनुमान शंकाकार कहता है कि आत्माको सर्वव्यापक सिद्ध करने वाला अब हमारा आखिरी एक अनुमान और सुन लीजिएगा। आत्मा व्यापक है, क्योंकि वह मन नही है और अस्पर्शवान द्रव्य है। यह आत्मा स्पर्शरहित द्रव्य है। जिसका स्पर्श न हो सके, जिस में स्पर्शगुण नही है ऐसा तो है यह द्रव्य और मन है नही अतः आत्मा सर्वगत है। "केवल स्पर्श रहित द्रव्य होनेसे" इतना ही कहते तो मनके साथ व्यभिचार होता था कि स्पर्शरहित द्रव्य तो मन भी है किंतु वह व्यापक नही है इस लिए हेतुमें यह कहा है कि जो मन तो है नही और स्पर्शरहित द्रव्य है ऐसा यह आत्मा है इस कारण व्यापक है आकाशकी तरह। जैसे कि आकाश अस्पर्शवान द्रव्य है। उसमें स्पर्श नही और द्रव्य है ही तो देखो, वह व्यापक हुआ ना! तो इसी प्रकार आत्मा भी अस्पर्शवान द्रव्य होनेसे व्यापक हो जायगा।

शंकाकारके हेतुमें कथित अस्पर्शवत् शब्दके अर्थकी असिद्धि—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यहाँ भी स्पर्श वाला नही ऐसा द्रव्य है आत्मा इस कथनमें जो अस्पर्शवान् शब्द कहा है तो जिसमें अ लगा है, न का प्रयोग है उसके तो दो अर्थ होंगे ना. प्रसज्यप्रतिषेध और पर्युदास। स्पर्शवाला नही क्या इसका इतना ही मतलब है कि 'नहीं है' तुच्छाभाव, या यह मतलब है कि स्पर्श वाला तो नहीं, किन्तु है कुछ और। और प्रसज्यरूप कहोगे तो जैसे अमूर्तमें प्रसज्यके प्रतिषेधका निराकरण किया है वही निराकरण यहाँ बनेगा। पर्युदास कहोगे तो अमूर्तके पर्युदास अर्थमें जो दोष दिया था वे दोष यहां आयेंगे, इस कारण तुम्हारा यह हेतु ही सिद्ध नही होता। फिर उससे तुम आत्माको व्यापक क्या सिद्ध करोगे?

शङ्काकारके कथित अस्पर्शवद्द्रव्यत्व हेतुमें अनेकान्तिकताका दोष— अब दूसरी बात देखिये! आपका हेतु संदिग्ध अनेकान्तिक है अर्थात् जो अनुमान बनाया जाय उसमें जो हेतु दिया जाय वह हेतु अगर उल्टी ही बात सिद्ध करे, तब तो रहता है वह विरुद्ध और हेतु उल्टा भी सिद्ध करे, सीधा भी सिद्ध करे तो उसे कहते हैं संदिग्ध अनेकान्तिक। शङ्काकारका अनुमान यह है कि आत्मा सर्वव्यापक है क्योंकि वह अस्पर्शवान द्रव्य है, याने स्पर्शवान नही है और फिर द्रव्य है। तो देखिये! अस्पर्शवान द्रव्यपन आकाशमें भी है और आकाश व्यापी है, यहाँ तो सही बात घट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायगी कि जो अस्पर्शवान द्रव्य होता है वह व्यापक ही होता है। मगर मन ऐसा है कि अस्पर्शवान द्रव्य तो है, मनका भी स्पर्श नहीं होता और द्रव्य है लेकिन वह व्यापी नही है आकाश की तरह सर्वव्यापक मन नहीं माना गया। मन तो अणुप्रमाण छोटा है, तो अब यह संदेह हो जाता है कि आत्मामें जो अस्पर्शवान द्रव्यपन पाया जा रहा है वह क्या आकाशकी भांति व्यापित्वको सिद्ध करता है या मनकी भाँति अव्यापित्व को सिद्ध करता है। अब हेतु सीधी और उल्टी दोनों बातोंकी सिद्धि करनेमें संदेह डाल रहा है। शङ्काकार कहता है कि संदेहकी इसमें क्या बात है ? हमने तो पहिले ही कह दिया कि मन तो हो नही और अस्पर्शवान द्रव्य हो, तो कहते हैं कि कहनेसे क्या होता ? जब अनेकान्तिक दोष आ रहा था उससे बचनेके लिए ही तो तुमने कह दिया। कोई कुछ बात कहे और उस बातका जिस एकमें दोष आये तो उसको कहदे कि यह न होकर फिर यह बात हो, तो यह तो कपटभरी बात है, दोष बचानेकी बात है, इससे दोष तो न बच जायगा। मानलो, कहोगे कि मनसे अन्यपना जिसमें हो और अस्पर्शवान द्रव्य हो वह हेतु बनाया याने मनसे अन्यत्व विशिष्ट अस्पर्शवानको हेतु कहा, वह मनमें पाया नही जाता। मन न हो और अस्पर्शवान द्रव्य हो इतना पूरा हेतु कहा है और वह पूरा हेतु मनमें नही पाया जाता, इसलिए संदेहकी क्या गुंजाइश तो समाधानमें पूछते हैं कि यदि यह बात है कि मनसे अन्यत्व विशिष्ट अस्पर्शवान द्रव्य हो तो व्यापक सिद्ध होगा तब तो निश्चित अनेकान्त होगया। पहिले तो हम संदिग्ध अनेकांतिक कहते थे कि अस्पर्शवान द्रव्यपना होनेपर क्या आत्मा आकाशकी तरह व्यापी सिद्ध हो जाय या मनकी तरह अव्यापी सिद्ध हो जाय। पहिले तो साँची और उल्टी सिद्धि होनेका संदेह बनाते थे। अब तो बिल्कुल उल्टा निश्चित अनेकान्त हो गया, क्योंकि मनसे व्यभिचार आता था, इसीलिए तुम मनको हटानेकी बात कह रहे हो कि मन तो न हो और अस्पर्शवान द्रव्य हो तो तुम्हारे ही कहनेसे यह सिद्ध होगया कि मनमें दोष आता है। जब तुम कह रहे हो कि मन तो हो नही और अस्पर्शवान द्रव्य हो, तो यहाँ निश्चित् अनेकान्तिक दोष आया, तो आप आत्माको व्यापक नहीं मान सकते। किसी भी प्रमाणसे आत्माके सर्वगतपनेकी सिद्धि नही होती इस कारण जैसे कि सब लोगोंको प्रतीतिमें आ रहा है सीधा स्पष्ट जान रहे हैं, मानलो कि आत्मा असर्वगत है, जिसको जिस प्रकारका देह मिला है वह आत्मा अपने देहके परिमाणमें रहता है यह प्रतीतिसिद्ध बात है। आत्मामें जो सुख दुःख आदिक उत्पन्न होते हैं वे आत्म प्रदेशमें ही परिसमाप्त हैं प्रदेशसे बाहर नहीं हुआ करते। तो स्वसम्वेदनसिद्ध बात है कि आत्मा अव्यापी है।

शरीरको अव्यापी माननेपर शंकाकार द्वारा मुक्त्युपायके अभावका उपालम्भ—अब शंकाकार कहता है कि आत्माको अव्यापी माननेपर कि थोड़ी जगह ही रहता है, आत्मा सर्वगत नही है ऐसा असर्वगत माननेपर तो बहुत बड़ा दोष आयगा। क्या दोष आयगा ? सो सुनो ! (शंकाकार कह रहा है) आत्मा तो मान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिया गया अव्यापी, थोड़े परिमाण वाला, थोडी जगह घेरने वाला। अब उस आत्मा के साथ जिन शरीर परमाणुवोंका संयोग बनाना है वे शरीरपरमाणु हैं बहुत दूर दूर, दूसरी दिशामें, दूसरे देशमें रहनेवाले परमाणुवोंके साथ अब इस आत्माका एक साथ संयोग तो नही हो सकता। यदि आत्माको सर्वगत मानते, पूरे आकाशमें फैला हुआ है तो जहाँ भी शरीरके रचने वाले परमाणु होते उनका आत्मामें संयोग तो कहलाता ही। अब मान लिया आत्माको अव्यापी थोड़ेसे क्षेत्रमें रहने वाला, तो अब उस आत्माके साथ भिन्न दशा और देशमें रहने वाले परमाणुवोंके साथ एक साथ संयोग नही हो सकता। और, जब शरीरारम्भक परमाणुवोंके साथ आत्माका संयोग न हो सका तो उन परमाणुवोंमें आद्य कर्म न बन सकेगा। आद्य कर्म कहते हैं— शरीरको रचने वाले परमाणुवोंका शरीरके उत्पन्न होनेकी जगहपर गमन करना। जिस जगह पर शरीर रचा जाना है उस जगह शरीरारम्भक परमाणुवोंका गमन होना. इसे कहते हैं आद्य कर्म याने पहिला काम। शरीर बननेके लिए पहिला काम यह होता है कि शरीरको रचने वाले परमाणुवोंका गमन हो। सो अब आत्माको तो मान लिया तुमने अव्यापी। उसके साथ दूर देशके रहने वाले शरीर परमाणुवोंका संयोग है नही, तो संयोगके बिना वह शरीर अणु कैसे खिचकर शरीरकी उत्पत्तिकी जगहपर आ सकेगा, तो जब उन शरीर आरम्भक परमाणुवोंमें आद्य कर्म न हो सका तो अन्त्य संयोग भी नही हो सकता। अर्थात् शरीरकी रचना हो रही है और हो गयी, ऐसा व्यपदेश जिस संयोगके बाद होगा उस संयोगका नाम है अन्तिम संयोग कि अब शरीर पूरा उत्पन्न हो गया। तो जब उन शरीर आरम्भक परमाणुवोंमें गमन ही नही हो सक रहा तब फिर शरीरका कार्य कैसे बने ? अंतिम संयोग कैसे बनेगा ? और जब अन्तिम संयोग न बन सका तो तन्निमित्तक शरीरकी उत्पत्ति कैसे होगी ? न तो शरीरके रचने वाले परमाणु आ सके, न उनका संयोग हो सका तो फिर शरीर बनेगा ही कैसे ? और, जब शरीर नही है आत्माके पास तो आत्माका और शरीरका सम्बन्ध ही न रहा। और जब आत्माका शरीरसे सम्बन्ध न रहा तो इसके मायने है कि सदा आत्मा मुक्त है। फिर तो मुक्तिका कोई उपाय करनेकी जरूरत भी न रही। बिना उपायके सहज ही आत्माका मोक्ष मान लेना चाहिए। इससे इतने बड़े दोषको टालनेके लिये तुम्हें सीधा मान लेना चाहिए कि आत्मा सर्वव्यापक है। आत्मा जब सर्वव्यापक है तो जहाँ से शरीरके रचने वाले परमाणु आयेंगे वहाँ भी आत्मा है, सो उन परमाणुवोंका आत्माके साथ संयोग है। उस संयोगकी वजहसे वे परमाणु खिच करके शरीर बनने की जगहमें आ जायेंगे। फिर अंतिम संयोग भी बन जायगा, शरीर भी बन जायगा, सम्बन्ध भी हो जायगा, फिर उपायकी जरूरत भी महसूस होगी कि किस तरहसे मुक्ति बने ? तो आत्माको अव्यापी माननेपर यह दोष आता है कि तब तो फिर आत्माका सदा ही मोक्ष अनुपाय सिद्ध हो जायगा।

आत्माको अव्यापी माननेपर मुक्त्युपायके सिद्ध हो सकनेका समाधान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उक्त शंकाके सम धानमें कहते हैं कि जो तुम दोष दे रहे हो कि फिर आत्माका सदा ही मोक्ष हो जायगा। सो यह दोष तब लगे जब कि यह नियम हो कि जो पदार्थ जिससे संयुक्त हो वह पदार्थ उसके प्रति ही गमन करता है, पर यह नियम नहीं है। दूर दूर भी चीज हो, फिर भी यथायोग्य जिसका जिसके प्रति गमन होनेकी बात है गमन हो जाता है। जैसे चुम्बक पत्थर लोहेसे कितना ही दूर है, लेकिन लोहेका चुम्बकके प्रति उत्सर्पण हो जाया करता है। तब यह तो नियम न रहा कि जो चीज जिसके पास जाय वह उससे संयुक्त हो तब हो जाय! इस कारण यह उपालम्भ देना कि आत्माको सर्वव्यापक न मानोगे तो इस तरह मोक्षका उपाय रचनेका अभाव हो जायगा। यह उपालम्भ अयुक्त है।

आत्माको सर्वगत माननेपर शरीरपरिमाणके अनियतत्त्व और अपटेपनका प्रसङ्ग — शंकाकारको अब यह बताया जा रहा है कि आत्माको अव्यापी माननेपर यह सामने आपत्ति खड़ी हो जाती है कि आत्माको तो मान लिया सर्वव्यापक, पूरे आकाशमें फैला हुआ तो उस आत्माका तो सारे आकाशमें रहने वाले शरीर आरम्भक (शरीरके रचने वाले) परमाणुवोंके साथ सम्बन्ध है, तब आत्मा पूर्ण व्यापक है तो परमाणु और कहाँ रहेंगे? जिन परमाणुवोंसे शरीर रचा जायगा, जहाँ है वहीं आत्मा है। तो आत्माके साथ शरीरारम्भक परमाणुवोंका एक साथ सम्बन्ध है, उसमें क्रमकी बात नहीं रही क्योंकि आत्मा है पूरा फैला हुआ और शरीरके रचने वाले परमाणु सदा हैं, वहीं हैं, तब वे परमाणु शरीरकी रचनाके लिए आ रहे हैं तो सारे ही खिचकर आ जायें तब फिर नहीं मालूम कितना बड़ा शरीर बन जायगा। अभी तो विश्वास है कि मनुष्यका शरीर बनता है तो पांच या सवा साढ़े पांच फिटका बनता है, फिर पता नहीं कि गर्भमें हा, पेटमें ही बच्चेका शरीर कहीं हाथी जैसा न बन बैठे! तब संसारकी विडम्बना हो जायगी, मनुष्योंकी परख भी न हो सकेगी और फिर बनते-बनते आकाश बराबर बन जाय. पर आकाश बराबर न बने इसके लिये तो कह सकते हो कि वे परमाणु भिच-भिचकर लोहपिण्डवत् कुछ थोड़ीसी जगहमें आ सकते है, लेकिन यहां तो विडम्बना हो जायगी कि मनुष्यका शरीर कहीं हाथी जैसा न बन बैठे! जैसे लोग इस विकल्पमें रहते कि इसके बच्चा होगा या बच्ची होगी? कोई ऐसा भी विकल्प कर सकता कि कहीं न बच्चा हो न बच्ची हो नपुंसक ही कहीं हो जाय, पर कोई ऐसा संदेह तो नहीं कर बैठता कि पता नहीं मनुष्यों जैसा बच्चा होगा या हाथी जैसा? यदि ऐसा होने लगे तो फिर रचनाका कोई परिमाण ही अंदाजमें न आ सकेगा। और, जब आत्मा अव्यापी है तो उसका जैसा अदृष्ट है उसके अनुसार शरीरारम्भक परमाणुका संयोग होगा और उस जातिके अनुसार जिस प्रकार जाति नामकर्मका उदय है, शरीर नामकर्मका उदय है उसके अनुसार रचना बन जायगी।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अदृष्टापेक्ष होकर शरीरारम्भक अणुओंमें आद्यकर्म होनेसे विडम्बना के अभवका शङ्काकार द्वारा कथन और उसके समाधानमें तीन विकल्पोंमें अदृष्टापेक्षाके अर्थकी पृच्छा—शंकाकार कहता है कि आत्माको सर्वव्यापक मानने पर सभी जगह शरीरके रचने वाले परमाणुवोंका संयोग होनेसे न जाने कितना बड़ा शरीर बन बैठे ऐसा सन्देह मत करो, ऐसा डर भी मत मानो, क्योंकि उन परमाणुवों का संयोग आत्माके भाग्यकी अपेक्षा रखकर ही अपनेमें संयोगी परमाणुवोंका आद्य कर्म रचेंगे अर्थात् आत्माका यद्यपि समस्त अणुवोंके साथ संयोग है फिर भी भाग्य जैसा होगा, अदृष्ट जैसा होगा उसकी अपेक्षासे ही अपने संयोगी परमाणुवोंमेंसे कुछ परमाणु आयेंगे, सब न आयेंगे इस कारण शरीर न जाने कितना बड़ा बन बैठे ? यह संदेह यह डर मत करो। तो समाधानमें पूछते हैं कि आत्मा और परमाणुवोंका संयोग अदृष्टकी अपेक्षा रखकर आद्यकर्म रचते हैं अर्थात् परमाणुवोंका गमन कराते हैं जहाँ कि शरीर बनता है वहाँपर, तो उसमें जो अदृष्टकी अपेक्षाकी बात कह रहे हो सो उसका अर्थ क्या है यह बतलावो ? आत्मा और शरीरारम्भक परमाणुवोंके संयोग में भाग्यकी अपेक्षा की, इस कारणसे उस संयोगने कुछ परमाणुवोंको तो भेजा जहाँ शरीर बनता है कुछ न भेजा तो अदृष्टकी अपेक्षाका अर्थ क्या है ? भाग्यकी अपेक्षा करनेका क्या यह मतलब है कि एकार्थ समवाय होना अर्थात् एकार्थ आत्मा याने जिस आत्मामें समस्त परमाणुवोंका संयोग है उस ही आत्मामें भाग्यका सम्बंध होता इसे कहते हैं एकार्थसमवाय। जैसे रूप और रसका एकार्थसमवाय है, याने जिस फल में रूप रह रहा है उस ही फलमें रस रहा है तो रूप और रस इन दोनोंका आधार एक है, इसको कहेंगे एकार्थसमवाय। तो क्या अदृष्टकी अपेक्षा करनेका यह अर्थ है कि आत्माका और परमाणुवोंका संयोग तो पहिलेसे ही है, अब उसी आत्मामें अदृष्ट आ जाय, भाग्यका सम्बंध और आ जाय तो एकार्थसमवाय हो जायगा, और तब कुछ परमाणु शरीर रचे जानेकी जगह पर आ जायेंगे। क्या अदृष्ट आत्माका यह अर्थ है ? अथवा आत्मा सर्वव्यापी है, इसी कारण समस्त शरीर परमाणुवोंका संयोग एक साथ है, अब अदृष्ट जरा उपकार और करदे, भाग्य थोड़ासा कुछ इस संयोगका उपकार करदे, कोई विशेषता लादे तब फिर ये परमाणु उस शरीर रचे जानेकी जगह पर पहुँच जायेंगे। क्या अदृष्ट पेक्षा अर्थ उपकार है या फिर एक साथ ही आद्यकर्मको उत्पन्न करना यह अदृष्टापेक्षा अर्थ है। अर्थात् आत्मा है सर्वव्यापक, और इसी कारण जिन परमाणुवोंसे शरीर रचा जायगा उन सब परमाणुवोंके साथ आत्माका है एक साथ संयोग आद्यकर्मको उत्पन्न करता है याने जिन परमाणुसे शरीर बनता है उन परमाणुवोंका गमन कराता है—जावो तुम शरीर बनो। तो संयोगने उन परमाणुवोंमें आद्यक्रिया करायी, सो केवल उस संयोगने नहीं करायी, किन्तु साथ ही साथ भाग्यने भी उन परमाणुओंमें क्रिया करायी, अर्थात् संयोगके साथ भाग्यने उन परमाणुवोंका गमन कराया कि तुम जावो और शरीर बन जावो इन तीन प्रकारके विकल्पों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में से भाग्यकी अपेक्षाका अर्थ क्या है ?

अदृष्टापेक्षाके अर्थके एकार्थसमवाय और उपकार इन दो विकल्पों का निराकरण—यदि कहो कि अदृष्टापेक्षाका एकार्थसमवाय अर्थ है याने जिस ही आत्माका उन परमाणुवोंसे संयोग है उस ही आत्मामें भाग्यका सम्बंध बन गया, इस कारणसे कुछ परमाणु जायेंगे शरीर बननेके लिए, यह विकल्प अयुक्त है, क्योंकि आत्माके साथ भाग्यका भी सदा सम्बंध है और आत्माके साथ सारे विश्वभरके परमाणुवों से भी सदा सम्बंध है। तब फिर वह स्थिति तो न आ पायी कि बात यह नहीं हो सकी इसलिए ये परमाणु शरीर बननेके लिए नही गए और ये ही गये ऐसा कहनेका अवकाश ही नही है। तब फिर सारे शरीर परमाणु पहुंच जायें और फिर न जाने कैसा कितने परमाणु वाला शरीर बन जाय। यदि कहो कि हम अदृष्टापेक्षा का अर्थ उपकार करेंगे तो यह भी अयुक्त है। जो उपकार करता है उसे तो कहते है, अन्पेक्ष्य अपेक्षा किये जाने योग्य। जिसकी बाट जोही जाय, और जिसका उपकार बन गया उसे कहते हैं अपेक्षक याने बाट जोहने वाला। तो अब यहाँ दो चीजें हो गई अन्पेक्ष्य और अपेक्षक। अपेक्षक कौन है ? बाट जोहने वाला कौन है ? आत्मा और शरीर आरम्भक परमाणुवोंका संयोग, वह बाट जोह रहा है कि मेरा भाग्य उपकार करदे तो शरीराम्भक कुछ परमाणु जाकर शरीर बन जायेंगे, और अपेक्ष्य हुआ भाग्य। वाट जोही जा रही है भाग्यकी। तो अपेक्ष्य और अपेक्षकमें सम्बन्ध क्या है ? अरे आत्मा और शरीरारम्भक परमाणुका संयोग है एक अलग पदार्थ और अदृष्ट है एक अलग पदार्थ। तो इसका सम्बन्ध न बननेसे उपकार सम्बंध नही हो सकता। अन्यथा यह बतलावो ! मान भी लो कि उपकार बना देगा भाग्य आत्मा और शरीरारम्भक अणुके संयोगका, तो भाग्यको जो आत्माणु संयोगका उपकार किया वह उपकार अणुसंयोगसे भिन्न है कि अभिन्न ? यदि कहो कि अणु संयोग ही कर दिया यह अर्थ हुआ। अगर कहो कि भिन्न है तो उपकारका भी उससे सम्बन्ध बतावो किस तरह हुआ ? यदि कहो कि अन्य भाग्यसे, तो अनवस्था दोष आता है। यदि कहो कि उस हीसे, तो इतरेतराश्रय दोष आता है। और, फिर जब संयोगकी अपेक्षा करने लगा आत्मा व अणुसंयोग कि भाग्यका उपकार जरा हमें मिल जाय तो हमारा व हम शरीर बन जाँय, तो आत्मामें फिर नित्यता नही रहती है।

अदृष्टापेक्षाके सहाद्यकर्मजननरूप अर्थका निराकरण और देहरचनाविधिका संक्षिप्त दर्शन—अब यदि तीसरा विकल्प कहोगे कि आत्मा और परमाणुवोंका संयोग यह एक पदार्थ है और भाग्य, यह दूसरा पदर्थ है, ये दोनों मिल करके परमाणुवोंका गमन कराते हैं कि तुम जावो और शरीर रूप बन जाओ। तो यह बात भी अयुक्त है क्योंकि उन दोनोंमें आत्मा और शरीर आरम्भक परमाणुका संयोग एक बात, और भाग्य दूसरी बात, इन दोनोंमें एकमें भी अगर शरीररचनाकी सामर्थ्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, आद्यकर्म करानेकी सामर्थ्य है तो दूसरेकी अपेक्षा नहीं बन सकती एकमें ही सामर्थ्य है, फिर दूसरेकी बाट जोहनेकी जरूरत ही क्या है ? यदि कहो कि अपने हेतुसे ही भाग्य और संयोग इन दोनोंमें मिल करके आद्य कर्म करनेकी सामर्थ्य आती है तब फिर उसमें ही अपने आपके हेतुसे संयोगकी अपेक्षा किये बिना भाग्यको ही क्यों न शरीरके रचनेकी सामर्थ्य वाला मान लो । देखो ! जैसे कोई पुरुष हाथमें चुम्बक पत्थर लिए है और लोहा पड़ा है दो फिट दूर और लोहा आकर्षित हो जाता है तो हाथके सहारे रहने वाले चुम्बकके द्वारा देखो वह पदार्थ दूसरा जो कि न हाथके आश्रयमें है, न चुम्बकके आश्रयमें है, दूर पड़ा हुआ है और उसका आकर्षण हो जाता है इसी तरह आत्मा तो है अव्यापी, थोड़े प्रदेशमें रहने वाला और उसमें रखा हुआ है भाग्य, क्यों कि भाग्य कर्म मायने और कर्मका एक क्षेत्रावगाह बनता है आत्माके साथ हो उस अव्यापी आत्मासे सम्बद्ध है अदृष्ट और उस अदृष्टमें यह सामर्थ्य है कि बहुत दूर दूरके रहने वाले शरीरारम्भक परमाणुवोंसे संयोग हो सकता है । तब फिर अन्य अन्य प्रकारके हेतु देकर आत्माको व्यापक सिद्ध करना सही नहीं बनता, बल्कि व्यापक माननेपर यह दोष आता है कि आत्मा यदि सर्वव्यापक है तो सभी जगह है परमाणुवों का संयोग, तो सब आ जायेंगे शरीर बननेके लिए । फिर कुछ निर्णय ही न रहेगा कि मनुष्यका शरीर कितना बने, कीड़ेका शरीर जितना बने । अट पट बन जायगा । कहो हाथीका शरीर चींटी बन जाय और कहो चींटीका शरीर हाथी बन जाय। इससे सीधी बात मानो कि आत्मा अव्यापी है, उसके साथ भाग्य बना है, ऐसे भाग्यके अनुसार शरीर रचना होती है, शरीर सम्बन्ध होता है, फिर शरीरसे रहित होनेके लिए, मुक्ति पानेके लिए मोक्षका उपाय किया जाता है ।

आत्माको सावयव माननेपर शंकाकार द्वारा दोषापत्तिका प्रस्ताव— शंकाकार कहता है कि शरीर तो अवयवों सहित है अर्थात् भौतिक अनेक भागोंका समूह शरीर है इसमें हाथ, पैर, नाक, मुख आदिक अनेक भाग हैं तब ऐसे सावयव शरीरके प्रत्येक अवयवमें प्रवेश करने वाला आत्मा भी सावयव हो जायगा । जैसे कि अनेक हिस्से । पौद्गलिक अनेक स्कंधोंका पिण्ड सो ही सब यह शरीर है । यों ही जो लोग देहप्रमाण मानते हैं आत्माको उनके मतमें आत्मा भी सावयव हो जायगा और जैसे घटको रचने वाले जो अवयव हैं, कण कण हैं वे समान जातीय कण हैं, इसी प्रकार यहाँ जो आत्मा बनेगा, आयगा तो वह भी समानजातीय अनेक आत्मीय अवयवोंका पिन्ड हो जायगा । जैसे घड़ा बना तो समानजातीय अनेक कणोंका समूह ही तो है । देह बना तो समान जातीय याने पौद्गलिक अनेक स्कंधोंका समूह ही तो है। ऐसे अवयव वाले शरीरमें प्रत्येक अवयवमें आत्मा आयगा तो उतने ही आत्मा बन जायेंगे । तो घट आदिककी तरह समान जातीय अवयवोंके द्वारा आत्माकी रचना बनेगी, उनका जुड़ाव बनेगा. और जब आत्माके समान जातीय अवयवोंके द्वारा आत्मा की रचना बनेगी, उनका जुड़ाव बनेगा और जब आत्माके समान जातीय अनेक अवयव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो गए तो इस कारण एक शरीरमें एक जीवमें, एक आत्मामें अनन्त आत्माकी सिद्धि हो गई। (शंकाकारके सिद्धान्तमें) आत्माको सावयव माननेपर दोष दिया जा रहा है। आत्मा अव्यापी तभी सिद्ध होगा ना जब कि वह सावयव बने। जो अवयव सहित है, भाग सहित है वही तो कम परिमाणका मिलेगा। तो जब आत्माको सावयव मानोगे तब तो अव्यापी मान सकेंगे और सावयव मानोगे, हिस्से वाला मानोगे तो शरीरके प्रत्येक हिस्सेमें प्रवेश करने वाले आत्मा उतने ही होंगे जितने शरीरके अवयव है। तो जहाँ शरीरके अवयव हुए वहाँ आत्माके अवयव हुए। तो एक ही आत्मामें अनन्त आत्माका प्रसंग हो जायगा।

आत्माको सप्रदेश माननेपर शंकाकार द्वारा द्वितीय दोषका प्रस्ताव— आत्माको सावयव माननेपर एक दोष तो उपरोक्त है। दूसरा दोष यह है कि अवयवों की क्रिया होनेसे अवयवोंका हो जाता है विघात, वियोग। जैसे अनेक हिस्सोंसे घड़ा बना। मिट्टीके अनेक कण मिलकर घड़ा बना तो वे कण डंडा मारो तो बिखर जाते हैं, न मारो तो भी बिखर जाते हैं, बहुत समयके बाद बिखरेंगे। जैसे अवयवकी क्रिया का विभाग हो जाता है तो संयोगका विनाश होनेसे घट नष्ट हो गया इसी प्रकार जब आत्माके अवयव बहुत हो गए तो उन अवयवोंमें होगी क्रिया। उससे अवयवोंका होगा विछुड़ना, तो इस तरह आत्माका विनाश हो जायगा। तो सावयव माननेपर ये आपत्तियाँ आती हैं इस कारण आत्माको निरवयव मानो। अवयव कहते हैं हिस्सेको। अनेक हिस्से वाला आत्मा मत मानो। अखण्ड निरवयव निरंश आत्मा मानो। और, जब निरंश मानोगे तो आत्मा सर्वव्यापक सिद्ध आसानीसे हो जायगा। जैसे आकाश निरंश है तो सर्वव्यापक है। परमाणु भी निरंश है, लेकिन वह एक प्रदेशी ही है। निरंश चीज या तो एक प्रदेश मात्र रहेगी या आकाशवत् सर्वव्यापक रहेगी। तो आत्माको अंश वाला हिस्से वाला, अवयव वाला माननेपर दो आपत्तियाँ आती हैं एक तो यह कि शरीरकी भाँति नाना अवयवों वाला आत्मा हुआ तो एक ही आत्मामें अनन्त आत्मा हो गए। जैसे कि एक घड़ेमें अनगिनते मिट्टी कण है और फिर जब उन अवयवोंका संयोग हुआ है तो कभी उन्हींकी क्रियासे उनका वियोग भी होगा। तो घट मिटनेकी तरह आत्मा भी मिट जायगा। इस कारण आत्मा निरवयव ही माना जाय तो सिद्धान्त सही होता है और निरवयव जो होता है वह सर्वव्यापक होता है। अणु मात्र तो आत्माको समाधानकारने भी नहीं माना। तब पारिशेष्य न्यायसे आकाश की तरह महान सिद्ध होगा।

आत्माको सावयव माननेपर समानजातीय भिन्नावयवारब्धत्वके प्रसङ्गकी शङ्काका समाधान—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि यह जो शंकाकार द्वारा कहा जा रहा है, वह बिना परीक्षा किए एकदम जल्दबाजीमें कहा जा रहा है। निष्पक्षता और विवेकके साथ विचार करोगे तो विदित होगा कि सावयव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेसे अनेक विभाग वाला हिस्से वाला, प्रदेश वाला होनेसे भिन्न-भिन्न अवयवों द्वारा वह रचा गया होता है, यह नियम नहीं बनता। औरकी तो बात क्या? अवयवसहित होनेसे भिन्न अवयवके द्वारा रचा जाना तो घटमें भी सिद्ध नहीं होता। घट सावयव है, अनेक अवयव हैं उसके, अनेक हिस्से हैं ऊपर नीचे, अगल बगल कितने हिस्से घड़ेमें पड़े हुए हैं, तो सावयव होनेपर भी घड़ा कहीं खपरियोंके संयोगसे न बन जायगा। खपरियां समान जातीय हैं ना! मिट्टी ही तो है। तो जो बनी हुई खपरियां हैं उन खपरियोंके संयोगसे घड़ा बनता हुआ किसीने देखा है क्या? अब रही मृत्पिण्डकी बात। सो वह मृत्पिण्ड उपादान कारण है, वही तो घटरूप परिणमेगा ना! तो उपादान कारणरूप मृत्पिण्डसे प्रथम ही अपने अवयवरूप अपने ही किसी पदार्थकी उत्पत्ति होती है। यह एक मोटा दृष्टान्त देकर समझाया जा रहा है। जो अनेक प्रदेश वाला होता है वह भिन्न-भिन्न अवयवोंको जुड़ाकर रचा जाय यह नियम नहीं बनता।

सावयवके भिन्नावयवारब्धत्वाभावका साक्षात् उदाहरण—सावयव पदार्थके भिन्नावयवारब्धत्वके अभावको साक्षात् उदाहरण रूपसे यदि कहा जाय तो आकाशको ही कह लीजिये! आकाशमें अवयव आप मानेंगे कि नही? जरूर अवयव हैं। देखो! आकाशके जिन अवयवोंमें हिमालय पर्वत है विंध्याचल पर्वत आकाशके अवयवोंमें है। अगर आकाशको सावयव नही मानते तो विंध्याचल और हिमालय दोनों एक चीज बन बैठेंगे! और, आकाशके अवयव तो सब जगह प्रतीत होते हैं। यह हॉल आकाशके जिन अवयवोंमें है, नीचे जानेकी सीढ़ियां उसी जगहमें हैं क्या? सीढ़ियाँ भिन्न जगहमें हैं? मगर क्या ऐसे अत्यन्त भिन्न पड़े हुये आकाशके अवयवोंको जोड़कर आकाश बनाया है? आकाश अखण्ड है, निरंश है। कभी ये प्रदेश अलग अलग न थे। और ये मिला जुलाकर एक बनाया हो ऐसा भी नही है। उस प्रकार का निरंश कहिये। पर उसमें अनन्त प्रदेश नही, फैला हुआ नही, सावयव नही, यह बात न बनेगी। तो सावयव होनेसे वह पदार्थ भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा हुआ बने यह नियम नही बनता। यही बात आत्मकी है। जिस देहमें जो आत्मा है वह आत्मा सावयव है। देह प्रमाण फैला हुआ है ना। तो उतना फैला हुआ है, उसके प्रदेश उतने हैं उस समय कि जितने आकाशप्रदेश हैं जिसमें फैला है। और चूंकि यह आत्मा अखण्ड है, और उसके प्रदेश अवयव कोई भिन्न चीज नही है तो उससे कई हजार गुना लम्बा चौड़ा शरीर मिले तो आत्माके प्रदेश उतने फैल जायेंगे। तो आत्मा सावयव है तिसपर भी अखण्ड है और भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा हुआ नही है।

सावयवके भिन्नावयवारब्धत्वका अनियम—अब मोटे पुराने ही दृष्टान्त पर आइये! जो कथन पहिले चल रहा था कि घट भी सावयव होकर पहिलेसे ही बने हुए खपरियोंके टुकड़ोंके संयोगसे घटकी उत्पत्ति नही बनी। हाँ उपादान कारणरूप मृत्पिण्डसे घटकी उत्पत्ति बनती है। सो वे भिन्न अवयव नही हैं, वे वे सब घटा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्मक बन गए। जो मृत्पिण्ड था, जितने उसमें मिट्टीके हिस्से थे वे सब घटात्मक हो गए हैं, इसमें भिन्न अवयवोंकी बात नही है। हाँ, एक पटका दृष्टान्त कुछ शंकाकार ऐसा दे सकता है कि देखो ना, तंतु अलग-अलग रखे थे और उनका कर दिया गया संयोग तो देखो, कपड़ा बन गया। यदि ऐसे ही आत्माके अवयवोंका संयोग कर दोगे तो तुम्हारा आत्मा बन जायगा। ऐसा उपालम्भ यों नहीं दे सकते कि अगर एक जगह पट आदिकमें अपने अवयवभूत सूतके संयोगपूर्वक पटकी उपलब्धि हो गई तो सभी जगह अपने अवयवोंके संयोगपूर्वक ही उपलब्धि बने, यह नियम नही बनाया जा सकता। अगर इस तरहका नियम बनाने लगोगे कि कोई काम, कोई बात एक जगह देखी गई तो सभी जगह उसे लादें। तब तो देखो ना, काठ लोहलेख्य होता है। लोहेके चाकू या औजारसे काठपर बेल-बूटा बनाते हैं। तो काठ लोहलेख्य है, लोहके द्वारा लिखा हुआ हो जाता है काठ, तो देखो ! एक जगह हमने देखा कि काठ लोहलेख्य हो गया तो वज्रको भी लोहलेख्य मानलो ! काठ लोहलख्य है तो फिर वज्रमें भी लोहलेख्यपना लाद दो, पर ऐसा तो नही है। इसी तरह पटमें तंतुके संयोगपूर्वक पट की उपलब्धि होती है तो आत्माको भी उसी तरह मान बैठें, यह बात युक्त नहीं है। पदार्थ हैं अनन्त और उनकी अपनी-अपनी पद्धतियाँ हैं। यदि आप कहें कि काठ और वज्रकी समानतामें तो प्रमाणसे बाधा आती है, प्रत्यक्षसे बाधा आती है, काठपर तो लोहसे निशान बना लिए जाते हैं, काट तक भी डाला जाता है, पर वज्र तो काटा भी नही जा सकता, उसपर निशान भी नही बनाये जा सकते, तो उसमें तो प्रमाण बाधा है। तो समाधानमें कहते हैं कि प्रमाणबाधा इसी तरह आत्मा और पटादिकी समानतामें भी है। पट तो अपने अवयवभूत संयोगपूर्वक बना है लेकिन आत्मा अपने संयोग पूर्वक नही बना। इससे आत्मा सावयव है लेकिन एक है और ऐसे अनन्त आत्मा हैं। यह नियम नही बनाया जा सकता कि जो सावयव हो वह समानजातीय भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा गया हो। एक पटकी मिसाल देते हो कि कपड़ा भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा गया है। तो यदि कुछ गहरी दृष्टिसे देखोगे तो कपड़ा कोई एक चीज ही नही है, अनेक तंतुओंका जो उस प्रकारका संयोग है वह है कपड़ा और उन मिले हुए तंतुवोंसे काम निकाला जा रहा है। जो एक पदार्थ होगा, सावयव होगा वह भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा हुआ नही हो सकता। दृष्टान्त तुम दोगे ही क्या ? इन भौतिक पौद्गलिक पिण्डोंका दोगे तो ये स्वयं एक पदार्थ हैं ही नही। कोई सा भी दृष्टान्त दोगे यहाँके दृश्यमान पदार्थोंमें वे सब अनन्त परमाणुवोंके द्वारा रचे गये है, उनमें जो एक परमाणु है वह निरवयव है, वह तुम्हारे दृष्टान्तमें भी न आयगा। आकाश और आत्मा ये दो ही पदार्थ ऐसे हैं कि बड़े परिमाण वाले होकर सावयव हैं, लेकिन आत्माका परिमाण परम महापरिमाण नही है, आकाशका परम महापरिमाण है।

आत्मामें भिन्नावयवारब्धत्वका प्रसङ्ग देनेपर आरब्धत्वके समयकी पृच्छा—अब शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि जो तुम यह आपत्ति दे रहे हो कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मा फिर समान जातीय भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा गया मानना होगा। तो यह बतलावो कि समान जातीय भिन्न आत्मारूप अवयवोंके द्वारा रचे गये आत्माको तुम किस समयके लिए मनवा रहे हो ? जब आत्मा जन्म लेता है नये शरीरमें उस ठीक जन्मके समयमें याने आदि कालमें भिन्न अवयवोंके द्वारा आत्माको रचा गया बतलाते हो या मध्य अवस्थामें। मोटेरूपसे यों समझिये कि जिस घड़ीमें बालक पैदा होता है उस घड़ीकी तुम बात कह रहे हो कि अनेक आत्मा जातिके अवयवोंके द्वारा वह आत्मा रचा हुआ होता है या जन्म लेनेके बाद कुमार अवस्थामें, जवानीमें बुढ़ापामें किसी भी अवस्थामें यह बतला रहे हो कि आत्मा समानजातीव आत्मारूप भिन्न अवयवों द्वारा रचा हुआ बन जायगा। शङ्काकार यह आपत्ति दे रहा था कि यदि आत्माको सावयव मानोगे तो अनेक हिस्सों वाला जैसे कि यह ५ फिटका आत्मा है, तो हिस्से तो हो ही गए आत्माके। तो जो हिस्से वाली चीज होती है वह भिन्न भिन्न हिस्सोंके संयोगसे बनती है। जैसे कपड़ा है, घड़ा है, भिन्न भिन्न हिस्सोंके संयोगसे बनते तो आत्मा भी जो एक यह जन्म ले रहा है वह भी भिन्न-भिन्न अनेक हिस्सोंसे बनेगा सो इसका खण्डन तो कर दिया लेकिन थोड़ी देरको यह मानकर कि हां, भिन्न-भिन्न हिस्सोंके द्वारा आत्मा बनता है तुम्हारी ओरसे मान भी लें तो यह बतलावो कि ऐसा रचाव किस वक्त हुआ ? जन्मके समय या जन्मके बाद ? जब चाहे बहुत उमर पड़ी है, किसी भी मध्य अवस्थामें ?

जन्म लेनेके आदिमें आत्माके भिन्नावयवारब्धत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि आदिमें ही हुआ, आत्मावयवों द्वारा आत्माका रचाव गर्भमें ही हुआ। जन्म तो असली गर्भका ही नाम है, लोक रूढ़िमें ऐसा कहते हैं कि जिस दिन बच्चा गर्भसे निकले कि पुत्रका जन्म हुआ, अरे जन्म तो ९ माह पहिले ही हो गया था जिस कालमें जीव गर्भमें आया। तो मनुष्यकी आदि असली तो वही है। सो यदि आदिमें मानोगे कि भिन्न-भिन्न अनेक आत्मरूप अवयवोंके संयोग पूर्वक आत्मा बना है अथवा गर्भसे निकलनेके समय आदि मान लो, वहाँ भी विकल्प करो सो उस कालमें यदि भिन्न भिन्न अनेक आत्मीय हिस्सोंके संयोगसे बना है तो उस वक्त फिर दुग्धपानमें प्रवृत्ति बालककी न हो सकेगी, क्योंकि दुग्धपानमें प्रवृत्ति होनेका कारण है इच्छा प्रत्यभिज्ञान, स्मरण, संस्कार। ये कहाँसे आ गए ? उस कालमें तो भिन्न-भिन्न अनेक हिस्सोंको जोड़कर बन रहा आत्मा। यह चीज तो बहुत काल बाद आया करेगी। यदि यह कहो कि जिन भिन्न-भिन्न आत्माके हिस्सोंके संयोगसे आत्मा बना वे अवयव खुद जानकार थे पहिले से जिन हिस्सोंको जुड़ाकर आत्मा एक बना है शरीरमें वे हिस्से भी तो चेतन हैं जानकार हैं। तो आत्माका रचने वाला जो अवयव है, समान जातीय आत्मारूप जो पहिले से मौजूद है और उन्होंने विषय दर्शन किया है, प्रत्यक्ष किया है स्मरण किया है, संस्कार भी उसमें पड़ा हुआ है तो उत्पन्न होते ही दुग्धपानकी प्रवृत्ति बन जायगी। तब तो समाधानमें कह रहे हैं कि फिर तो तुरन्त ही उत्पन्न हुए बच्चेमें भी अन्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समस्त जीवोंकी तरहकी अनेक प्रवृत्तियाँ बन जावें। केवल दुग्धपानकी बात तक ही क्यों रह गए वे अवयव ? रोजिगार भी करने लगे, रिस्तेदारोंमें भी घूम आये, और भी कर आवे, क्योंकि जिन भिन्न अवयवोंके संयोगसे आत्मा बना है वे भिन्न अवयव तो पहिलेसे ही बड़े समर्थ हैं। तो दो आपत्तियाँ आती हैं एक तो यह कि भिन्न समाज जातीय आत्मा रूप अवयवोंके संयोगसे आत्मा यदि रचा गया मानते हैं तो दुग्धपानमें तुरन्त जाये हुए बच्चेकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती या फिर उन भिन्न-भिन्न सभी अवयवोंमें पूरी-पूरी जानकारी स्मरण प्रत्यभिज्ञान मान लेनेपर तुरन्त जन्म लेते ही उसे वे सारे काम कर देना चाहिए जैसे कि काम बड़े पुरुष कर दिया करते हैं। इस कारण यह सिद्ध नहीं हो सकता कि उत्पन्न होते ही आदिमें ही समान जातीय आत्म स्वरूप भिन्न-भिन्न अवयवोंके द्वारा रचा गया आत्मा है।

जन्मके पश्चात् मध्यावस्थामें भी आत्माके भिन्नवयवारब्धत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि आदि समयमें मत मानो आत्माको भिन्नावयवारब्धत्व, पर मध्य अवस्थामें, जवानीमें और अगल बगल किसी समयमें भिन्न-भिन्न समान जातीय आत्मीय अवयवोंके द्वारा आत्मा रचा गया है यों मान लो ! तो समाधानमें कहते हैं कि इस बातमें तो प्रत्यक्षसे विरोध है। अरे, काम तो शुरु शुरुका था। उत्पन्न किस प्रकार होता है आत्मा ? जब एक बार बन गया आत्मा, शरीरमें आ गया और फिर मानना कि तब तो नहीं, किन्तु बादमें भिन्न-भिन्न समानजातीय आत्मीय अवयवोंसे रचा गया मान लिया थोड़ी देरको, बनता तो नहीं, लेकिन मानलो, अंतिम अवस्थामें घटकी तरह वे सब अवयव, जब आत्माके हिस्से बिखर जायेंगे तो आत्माका तो अत्यन्त नाश हो गया। फिर स्मरण आदिक तो रहा नहीं। अब वे अवयव फिर कहीं जा कर नये शरीरमें घुसेंगे और इन अवयवोंके संयोगसे आत्मा कहलायेगा। तो जिन अवयवोंके संयोगसे आत्मा रचा गया मान रहे हो वे अवयव तो स्मरण रहित हैं, आखिर वे किसी जगहसे छिटकर ही तो आये हैं। सो भी दुग्धपान आदिकमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

विभाग संयोगपूर्वक सर्वत्र उपपाद विनाश देखे जानेका अभाव—और इस तरहके विनाश और उत्पत्ति होनेकी क्रिया किसी भी जगह नहीं देखी जाती। देखो ! स्वर्णका एक कड़ा था, उसे तोड़कर बाजूबन्द बना दिया गया तो कड़ाका बाजूबंद बना लेनेपर किसी कारणसे किन्हीं अवयवोंमें क्रियाका विभाग हुआ है। संयोगका विनाश हुआ है। तो इस तरह तो कड़ेका विनाश हो गया और फिर वे ही अवयव वाली फिर क्रियाका संयोग करे और उस क्रमसे बाजूबंद बने ऐसा नहीं देखी जाता। जैसे कि शंकाकार यहाँ यह आपत्ति मान रहा है कि आत्माके अवयव इकट्ठे हुए सो बन गया आत्मा। अब अवयव बिखर गए सो मर गया आत्मा, फिर नये शरीर में अवयव जुड़ गए सो बन गया दूसरा आत्मा। इस तरहकी बात तो इन सोनेके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आभूषणोंमें या लोहे आदि पर्यायोंमें भी नही पायी जाती कि पहिले तो था कड़ा सो कड़ामें यह किया गया हो बाजूबद बनाते समय कि कड़ेके अवयवोंमें तो पहिले संयोग का विनाश किया हो और सोना बिल्कुल मिटा दिया गया हो और फिर जो अवयव अलग हो गए, बिखर गए, सोना भी न रहा, फिर उन अवयवोंको जोड़ा गया हो और फिर उनके बाजूबन्द बनाये गए हों ऐसा तो यहाँ भी नही देखा गया है। वही एक सोना है जो अभी कड़ा पर्याय रूपसे है और फिर उस ही कड़ा पर्यायमें बसते हुए द्रव्यको सुनारने अपने हस्तादिकका व्यापार होनेपर वही कड़ा बाजूबन्द रूप बन गया, यह देख रहे हैं। वैशेषिक सिद्धान्तमें सभी पदार्थोंके रचनेका ऐसा विधान बना रहे हैं कि पहिले तो उस पदार्थके वे अवयव बिखर बिखरकर बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं, फिर उनका संयोग होता है तब नई चीज बनती है, ऐसा नियम शायद किसी पदार्थमें घट भी जाय पौद्गलिकमें वह भी किसीमें शायद। लेकिन पौद्गलिकमें भी प्रायः करके यह बात नही पायी जाती कि पहिले तो अवयव बिखरें फिर वे अवयव जुड़े तब चीज बने। तो आत्मा आदिक पदार्थोंके सम्बन्धमें तो यह कल्पना ही नहीकी जा सकती। ऐसी बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है कि कड़ेके अवयव पहिले बिखरे फिर वे अवयव जुड़े तब मुकुट बाजूबंद आदिक बने, ऐसा तो यहाँ भी नही देखा जाता। तो आत्माके विषयमें संदेह करना तो बिल्कुल ही गलत बात है।

आत्माको सावयव शरीरव्यापी माननेपर आत्माके छेदके प्रसङ्गकी शङ्का और उसका समाधान—शंकाकार कह रहा है कि यदि आत्माको सावयव, शरीरमें ही व्यापने वाला मानोगे अर्थात् इन अवयवों वाले देहके बराबर हीं आत्मा है इस तरह मानोगे तो यह दोष आयगा कि जब कभी शरीरका कोई अङ्ग कट जाय तो आत्मा भी कट गया और इस तरह आत्माका छेद हो जायगा, भंग हो जायगा, टुकड़े हो जायेंगे। समाधानमें कहते हैं कि सावयव शरीरमें आत्मा व्यापकर रह रहा है और कभी कोई अंग कट जाय अंगुली हस्तादिक, तो आत्माके प्रदेशोंका भी छेद हो जाता है यह तो इष्ट है। यह दोषके लिए नही है, मगर किस तरहसे भंग होता है उस प्रक्रियाको समझो। शरीरमें सम्बद्ध जो आत्मप्रदेश हैं उनसे जो अलग हुए, छिन्न हुए, कट गए शरीर प्रदेश हैं उन उन प्रदेशोंमें आत्मप्रदेशके रहनेका ही तो नाम छेद है, इतनी हीं तो बात है। पर वहाँ इस तरहका छेद नही, भंग नहीं कि जैसे कट गई अंगुली और वह ५ हाथ दूरपर पहुँच गई तो जैसे उस बीचमें ५ हाथके अन्तराल में शरीरका कोई प्रदेश नही, अङ्ग नही है, अंगुली दूर पड़ी है, शरीर दूर रखा है, यों कुछ आत्मप्रदेशमें यह बात नही है। अंगुली कट जानेपर ५ हाथ दूर अंगुलीके पहुँच जानेपर वहाँ भी आत्मप्रदेश है और अन्तरालके बीचमें भी आत्मप्रदेश है और शरीरमें आत्मप्रदेश है। आत्मा अखण्ड है सो इस सम्बन्धमें आत्मा कुछ इतना विस्तारमें पहुँच गया है, तो चूँकि इतनी दूर पहुँच गया है और कटी हुई अंगुलीके प्रदेशमें आत्म प्रदेश है इस दृष्टिसे भंग कह सकते हो, उस भंगमें कोई दोष नही है। अगर ऐसा

http://sahjanandvarnishastra.org/

भंग न हो अर्थात् कटी हुई ५ हाथ दूर पर पड़ी हुई अंगुलीमें आत्मप्रदेश न हो तो कटनेपर अंगुली भी थोड़ी देरको तड़फती है, कम्पन होता है, वह कम्पन न होना चाहिए। छिपकलीसे पूंछ अलग होते ही पूँछमें देरतक कम्पन होता है। वह किस बातका कम्पन है कि आत्माके प्रदेश इस शरीरसे लेकर पूंछ तक बराबर हैं और प्रदेशके सम्बन्धसे ही, आत्माके सम्बन्धसे ही उस पूँछमें कम्पन हो रहा है। तो इस तरहका छेद है। आत्म प्रदेशोंका वहाँ तक पहुँचना न हो तो कम्पन नही हो सकता। और कम्पन पाया जाता है, इससे सिद्ध है कि शरीरका अवयव कट जानेपर आत्म प्रदेशमें भी छिन्नता आ गयी, किन्तु बीचमें तांता नही टूटता है।

छिन्नावयवमें आत्मा माननेपर अनेक आत्माके प्रसंगकी शंका और उसका समाधान – शंकाकार कहता है कि फिर तो कटे हुए अवयवोंमें रहने वाले जो आत्म प्रदेश हैं वे भिन्न आत्मा कहलायेंगे। अंगुली कट जानेपर ५ हाथ दूर अंगुलीके हट जानेपर वहाँ भी आत्म प्रदेश मानते और शरीरमें भी आत्म प्रदेश कहते। तो अब दो आत्मा हो गए। अंगुलीमें रहने वाला एक आत्मा और शरीरसे रहने वाला एक आत्मा। तो यों कई आत्मा हो जावेंगे। समाधानमें कहते हैं कि इस तरह भिन्न दो आत्मा नही बनते। कारण यह है कि भिन्न अवयवमें जो आत्म प्रदेश हैं वे वहाँसे हटकर संकुचित होकर इस ही शरीरमें तो आयेंगे। वहाँ तक भी पूरा एक आत्मा है। अवयव छिन्न हो गया और वहाँ तक आत्मा फैल गया, अब सिकुड़कर आ जायगा आत्मामें ही जैसे कमल नालका (भिसका) कोई हिस्सा टूट जाय तो उसके तंतु उस छोटे हिस्से तक लगे रहते हैं, लेकिन कुछ समय बाद ही वहाँसे बिछुड़कर इस बड़े भाग में ही प्रवेश कर जाते हैं। इसी तरह जब शरीरका कोई हिस्सा कटता है तो कटकर दूर पहुँच गया तो आत्म प्रदेश वहाँ तक बना रहता है, पर थोड़े ही समय बाद वहाँ के आत्म प्रदेश हटकर वहाँसे मूल शरीरमें पहुँच जाते हैं। इस कारण दो आत्मा मानने का प्रसंग नही आता। आत्मा वह एक ही है। कहीं कहीं कथानकोंमें इतिहासमें यह भी बताते हैं कि कोइ वीर राजपुत्र तलवारसे लड़ रहा था, लड़ाईमें उसका शिर कट गया तिसपर भी बादके एक दो जवानोंको उसने मार डाला। यह बात असम्भव सी नही है, क्योंकि आत्म प्रदेशका कुछ समय अवस्थान रहता है। यदि नीचेका आधा धड़ कट जाय और फिर तलवार चलाता रहे और फिर एक दो हाथ चला दे इसमें तो जरा भी शंका नही ऐसा हो ही सकता है और, यह प्रत्यक्षमें सब देखा जा रहा है। किसी पशुका कोअंग कट गया तो कटे हुए अंगमें कम्पन है और कुछ देर बाद कम्पन मिट जाता है। तो इससे सिद्ध है कि वह आत्मा एक ही है और उस कालमें वह फैल गया।

समुद्घातदशामें आत्मप्रदेशोंके विसर्पणका कथन – कुछ स्थितियाँ ऐसी होती हैं कि जिनमें आत्मा शरीरसे बाहर फैल जाता है। ऐसी स्थितियाँ ७ प्रकारकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं जिनको समुद्घात शब्दसे कहते हैं। कषाय समुद्घात जब किसी मनुष्यको तीव्र क्रोध आता है तो क्रोधके समयमें भी शरीरके आत्मप्रदेश शरीरसे दूर–दूर कुछ फैल जाते हैं, ज्यादहसे ज्यादह तीन गुने तक फैल जाते हैं क्रोधमें। और, ऐसा कहनेकी प्रथा भी है जब कोई तीव्र क्रोध करता है कि आप आपेसे बाहर क्यों हुए जा रहे हैं ? याने शरीर परिमाण जो आत्मा है उससे आपके प्रदेश दूर फैल गए, इतना तीव्र क्रोध किया जा रहा है। एक वेदना समुद्घात होता है। जिसमें कोई तीव्र वेदना हो. शरीरमें बुखार तीव्र हो अथवा अंग कट जाय यह भी वेदनामें ही है। तो वेदनाके समय शरीर-स्थ आत्माके प्रदेश कुछ बाहर फैल जाते हैं, और यहाँ तक बताया गया कि वे फैले हुए आत्म प्रदेश यदि कुछ इस विधिसे स्पर्श करने ओषधी तक पहुँच जायें तो उसका रोग दूर हो जाता है। कभी अनुभव किया होगा कि तेज बुखारके बाद जब एक दम बुखार शान्त होनेकी स्थिति होती है तो भीतर ही भीतर ऐसा अनुभव होता है मैं शरीरमें नहीं, केवल एक हाड़ पिंचर मात्र रह गए। शरीर सब सूख गया और वहाँ भी ढीला ढाला यह आत्मप्रदेश बना हुआ है। कुछ ऐसे ढगका अनुभव होता है और उसके बाद देखते हैं तो बुखार साफ हो जाता है, तो वेदना समुद्घातमें आत्माके प्रदेश शरीरसे बाहह फैल जाते हैं। किसी भी समुद्घातमें शरीरको एकदम छोड़कर आत्मा नहीं फैलता, शरीरको छोड़कर जानेका नाम तो मृत्यु हो जायगा। शरीरमें भी आत्मा के प्रदेश रहते हैं और बाहर भी फैलते। वैक्रियक समुद्घात, जब विक्रिया करता है यह जीव जैसे विष्णु कुमार मुनिका हाथ फैला था, वह हाथ समुद्रान्त पहुँच गया तो उस स्थितिमें भी आत्मप्रदेश फैल जाते हैं। तैजस समुद्घातमें ऋद्धिधारी मुनियोंके दाहिने कंधेप तैजस शरीर बनता है तो दुनियामें आराम सुखको उपस्थित कर देता है और जब बायें कंधेसे निकलता है तो नगरीको भष्म कर देता है। और स्वयंको भी भष्म कर देता है, उस समय क्या है ? समुद्घात ही तो हुआ वहाँ भी आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर निकल गये। एक है मारणानिक समुद्घात। यह समुद्घात सबके हो यह नियम नही। किसी किसी जीवके होता है। जिसमें कुछ बुद्धि बल भी पड़ा हुआ हो और किस भवमें पैदा होना है उस भवकी बड़ी आकांक्षा लगा रखी हो. अन्य कुछ और कारण लगाकर मरण समयमें, मरणसे पहिले जीवके प्रदेश उस जन्मस्थान तक पहुँच जाते हैं और वहाँसे फिर लौटकर शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, थोड़ी देर बाद फिर मरण हो जाता है। मरणसे पहिले अपना नया घर देख आता। देखता तो नही, छू आता, यह मारणान्तिक समुद्घातमें होता है। एक है आहारक समुद्घात प्रमत्त विरत मुनियोंके कोई तत्त्वमें शंका हुई और आकांक्षा हुई कि इसका क्या समाधान है, तो वह ध्यानमें बैठ जाता है एकचित्त होकर तो मस्तकसे एक आहारक पुतला निकलता है और वह तीर्थंकर महाराज जहाँ विराजे हों वहा तक पहुँचता है और प्रभुका दर्शन करके वापिस आ जाता है। उस स्थितिमें उनकी शंकाका समाधान हो जाता है। उस समय आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर वहाँ तक गया जहाँ तक वह पुतला गया। एक है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

केवली समुद्घात सबसे बड़ा समुद्घात केवली समुद्घातमें लोक पूरणके समय होता है, अन्य किसी भी समुद्घातमें यह स्थिति नहीं हो पाती कि जीव समस्त लोक प्रमाण बन जाय। अरहंत भगवान सकल परमात्माकी आयु तो रह जाय अन्तर्मुहूर्त और तीन अघातिया कर्म रह जायें लाख वर्षकी स्थितिके तो उस समय प्रभुके आत्मप्रदेश शरीर विष्कंभ प्रमाण ही नीचेसे ऊपर तक १४ राजू तक फैल जाते हैं, फिर अलग बगल, फिर आमने सामने, और फिर जो वातवलय शेष रह गए थे उनमें भी फैल जाता है। इसको कहते हैं लोक पूरण, जब कि वात वलयमें फैल गया उस समय लोकके एक एक प्रदेशपर आत्माका एक-एक प्रदेश अवस्थित है। इसको समवगणा कहते हैं। जितने ही लोकाकाशके प्रदेश हैं उतने ही आत्माके प्रदेश हैं और समतामे एक-एक प्रदेशपर एक-एक प्रदेश हो जाते हैं। तो इन स्थितियोंमें आत्मप्रदेश बाहर निकल जाते है। इससे कहीं अनेक आत्मा नहीं बन गए। वे प्रदेश फिर संकुचित होकर इस ही शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं।

छिन्न आत्मप्रदेशोंके आत्मामें संघटनका वर्णन—अब शङ्काकार यह कहता है कि कुछ प्रदेश छिन्न होगए, कुछ प्रदेश अछिन्न रहे याने शरीरमें ही रहे और कुछ वियुक्त होकर दूर पहुँच गए, तो ऐसे छेदे गए और पहिलेसे ही शरीरमें मौजूद रहे आत्मप्रदेशमें संघटन कैसे हो जाता है, मिलाप कैसे हो जाता है. वे प्रदेश यहाँ आ कैसे जाते हैं ? समाधान—बाहर छिन्न भागमें रहने वाले आत्मप्रदेश संघटन में यों आ जाते कि मुख्यतया तो आत्मप्रदेश शरीरमें ही है ना ! अब कटे हुए अङ्गमें थोड़े प्रदेश बाहर गए तो जहाँ १० प्राण मौजूद हैं स्थान तो सही वहीं है, स्पर्शन इन्द्रियके थोड़ेसे अंगोंका प्राण बाहर था, वे प्रदेश वापिस आ जायेंगे और फिर वह अंगुली प्राणरहित हो जायगी। जैसे पद्मनाल (भिस) के तंतु बाहर निकल जानेपर भी कुछ देर बाद वे भिसमें आ जाते हैं, ऐसा होना यह कर्मविपाकके वश होता है। इस प्रकारका जिस जीवके कर्मका उदय है उसका यों समुद्घात होता है। छिन्न अंग तक आत्मप्रदेश पहुंचते हैं फिर उनका संघटन हो जाता है, वे प्रदेश अपने ही धाममें प्रवेश कर जाते हैं। सबका ऐसा नहीं होता कि अंग कटनेपर प्रदेश बाहर चले ही जायें सो नहीं। किसीके वहीं प्रदेश रहते हैं बाहर जाते नहीं किसीके जाते भी हैं। तो जिसका जैसा भाग्य है उसके अनुसार उसमें वैसी व्यवस्था रहती है।

देहप्रमाण आत्माका निर्बाधबोध प्रतिभास—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि आत्मा सर्वव्यापक है या नहीं। वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार आत्मद्रव्य सर्वगत है, पर प्रत्यक्ष अनुमान आगमयुक्ति अनुभवके आधारपर यह सिद्ध होता है कि आत्मा देह प्रमाण है। और ऐसे ऐसे आत्मा अनन्त हैं। तो बात जिस तरहसे सत्य व्यवहार में आती है। जैसे अपने आपके रचने वाले तंतुवोंमें सूतोंमें एक निश्चित देश कालके आकाररूपसे प्रतिभासमान है कपड़ा, बस ऐसा ही है, इतना ही बड़ा, लम्बा चौड़ा है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसी तरह शरीरमें ही एक नियमित देशकालके आकारसे प्रतिभासमान हुआ आत्मा उतना ही प्रतिभासमें आ रहा जितना कि शरीर परमाणु फैले हुए हैं, सबको अपना अपना अनुभव हो रहा होगा कि मैं बस इतनेमें ही सब कुछ हूँ। कभी शिरमें चोट लग जाय तो लगता कि दर्द तो सिर्फ उसी जगह हो रहा, पर ऐसी बात नहीं है। जितने शरीर प्रमाण आत्मा है उस पूरे आत्मामें सर्वत्र उस दर्दका अनुभव हो रहा है, पर हाँ, उस दर्दका जो निमित्त कारण है उस कारणपर दृष्टि होनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि देखो दर्द यहाँ हो रहा है। तो जैसे निर्बाध ज्ञानमें प्रतिभास हो उस तरहसे ही व्यवहार बना करता है और वह समीचीन व्यवहार है। यह हेतु असिद्ध नहीं है। शरीरसे बाहर आत्माके प्रदेशोंका अभाव है। सुख दुःख विचार कल्पना सब कुछ शरीर के अन्दर आत्मामें ही हुआ करता है। बाहर कुछ नहीं होता। तब आत्माको मानो, पर मानो कि यह चैतन्यस्वरूप है ज्ञानादिक गुणमय है, देह प्रमाण है और ऐसे-ऐसे अनन्त आत्मा हैं। इसके विरुद्ध जो विशेषवादमें आत्मस्वरूप माना है एक नित्य सर्व-व्यापक निरंश गुणरहित, प्रदेश रहित, क्रिया रहित जैसा माना है वैसा आत्म द्रव्य सिद्ध नहीं होता।

सामान्य विशेषात्मक पदार्थकी प्रमाण विषयताका प्रकरण—यह मूल प्रकरण इस प्रसंगसे सम्बन्धित है कि ज्ञानका विषय बताया जा रहा था कि प्रमाणका विषय होता सामान्य विशेषात्मक पदार्थ इसमें सभी पदार्थ आ गए। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, सभी सामान्य विशेषात्मक हैं, और वे पदार्थ प्रमाणके विषय होते हैं इस पर वैशेषिककी यह आपत्ति थी कि सामान्य और विशेष स्वयं जुदे पदार्थ हैं और उनके अतिरिक्त द्रव्य गुण कर्म भी पदार्थ हैं और ये परस्परमें सम्बंधित होते हैं है समवाय नामके पदार्थसे सम्बन्धित होते हैं। इस तरह पदार्थकी व्यवस्था है और ये ही ज्ञानके विषय हैं। सामान्य रहित विशेष तथा विशेष रहित सामान्य सत् ही नहीं है अतः ज्ञानका विषय नहीं होता। परन्तु विशेषवादकी ओरसे एक बहुत लम्बा चौड़ा सिद्धान्त रखा गया था कि पदार्थ ६ होते हैं, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। उनमें द्रव्य नामक पदार्थ ९ प्रकारके हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। तो आत्मासे पर्यन्त ८ द्रव्योंका तो जैसा कि विशेषवादमें माना गया है उसका निराकरण किया।

विशेषवादसम्मत मनोद्रव्यकी असिद्धि—अब कहते कि मन द्रव्य भी सिद्ध नहीं होता। वैशेषिक सिद्धान्तमें मनको सक्रिय और नित्य माना है। मन एक अलग द्रव्य है। आत्मा अलग द्रव्य है। ज्ञान सुख आदिक गुण अलग पदार्थ हैं। ये सब अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं। एकका सत् दूसरेमें नहीं है। पर इनका सम्बंध जोड़नेसे फिर यह सब इञ्जन चलने लगता है, ऐसा विशेषवादमें माना है। तो मनको भी एक अलग द्रव्य मान लिया। वह मन अलग क्या चीज है, और फिर अलगसे मनक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूप हैं, क्या आकार है ? कैसे आता है, कैसे आत्मासे जुटता है, इन सब बातोंपर विचार करनेसे मनकी कुछ भी सिद्धि नहीं होती। मन है, लेकिन नित्य एक निरंश कोई मन हो ऐसा नहीं है, जैसे कि शरीर रचा है और शरीरमें बाहर ये इन्द्रियाँ रची गई हैं आँख, कान, नाक, जिह्वा और स्पर्शन इसी तरह अन्दर भी एक इन्द्रिय रची हुई होती है उसे कहते हैं मन बाह्य इन्द्रियाँ ५ हैं और भीतरी इन्द्रिय एक है। इन ५ इन्द्रियोंको कहते हैं बाह्य करण और मनको कहते है अन्तःकरण। कहते हैं ना व्यवहारमें—जरा अन्तः करणसे कहो, तो वह मन है अन्तःकरण, भीतरी इन्द्रिय। तो जैसे ये बाह्य इन्द्रियाँ शारीरक हैं, पौद्गलिक हैं, इसी तरह भीतरकी मन इन्द्रिय भी पौद्गलिक है, शारीरिक है, शरीरका ही एक अंग है। इसको कहते हैं द्रव्यमन। और जैसे इन बाहरी इन्द्रियोंके प्रयोगसे जो कुछ ज्ञान बनता है, विचार विकल्प बनता है वह कहलाता है भावेन्द्रिय, इसी प्रकार द्रव्य मनके प्रयोगसे, निमित्तसे जो विचार बनता, तर्क वितर्क होता वह कहलाता है भावमन। भावमन है चेतनका अंग और द्रव्य मन है शरीरका अंग। इस आत्मासे अतिरिक्त मन नामका कोई द्रव्य अलग हो और वह मन फिर आत्मामें संयुक्त हो ऐसी बात नहीं है।

विशेषवादसम्मत पदार्थोंकी असिद्धि—विशेषवादमें जो ९ द्रव्य माने गए हैं और जैसा उनका स्वरूप वर्णित किया गया है वह सब प्रमाणसे सिद्ध नहीं है, और तब ऐसा कहना कि पृथ्वी आदिक द्रव्य दूसरोंसे भेदको प्राप्त हैं, क्योंकि द्रव्यत्वका उनमें सम्बन्ध है अर्थात् ये द्रव्य हैं और गुण कर्म सामान्यविशेष इन सबसे न्यारे हैं, क्योंकि इनमें द्रव्यत्वका संबंध है और गुण कर्म आदिमें द्रव्यत्वका सम्बन्ध नहीं है। तो द्रव्यत्वका सम्बन्ध नामका हेतु ही गलत है, क्योंकि पहिले ये द्रव्य सिद्ध होलें पृथ्वी आदिक तब तो द्रव्यत्व कुछ होता है यह माना जायगा। और, यहाँ तुम कह रहे द्रव्यत्वका सम्बन्ध होनेसे वह द्रव्य कहलाता तो कहते कि स्वयं ही तो सिद्ध हो ये द्रव्य ही सिद्ध नहीं हो रहा विशेषवादमें सो यह हेतु तुम्हारा आश्रय सिद्ध है और द्रव्यत्वका कोई स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता अतः हेतु स्वरूपासिद्ध भी है क्योंकि द्रव्यत्वका सम्बन्ध मायने समवाय वह प्रमाणसे सिद्ध नहीं है इसलिए द्रव्य पदार्थ भी घटित नहीं होता। तब ऐसा कल्पनामें माना हुआ द्रव्य न मानकर अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भव दोषसे रहित ६ जातिके पदार्थोंकी इस तरह प्रतिपत्ति करना चाहिए कि पदार्थ ६ जातिके हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें जीव धर्म अधर्म, आकाश, काल ये ५ तो अमूर्तिक हैं, इनमें रूप रस, गंध, स्पर्श नहीं है। पुद्गल मूर्तिक हैं, इनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श है। इन ६ प्रकारके पदार्थों से धर्म, अधर्म, आकाश काल इनमें विकार विभाव परिणमन नहीं होता। बिगड़ने वाले दो ही द्रव्य हैं जीव और पुद्गल। देख लीजिए। मेरे जीवके साथ जो ये पुद्गल लगे हुए हैं मनुष्य शरीर आदिक सो देखो ! इस संगतिसे दोनों ही बिगड़े रहेंगे। आत्मा भी विकारको प्राप्त हो रहा है और शरीर अणु कर्म अणु ये भी अपने अकर्मत्व और शुद्ध प्रकृतिको छोड़कर इस प्रकारकी विकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अवस्थामें आये और सम्बन्ध छूट जाय तो आत्मा भी सुधरी अवस्थामें आ जायगा और कर्म आदिक भी सुधरी अवस्थामें आ जायेंगे ।

उपयोगमय होनेसे सुधार बिगाड़की आत्मतत्त्वपर जिम्मेदारी—देखो भैया । जीवमें तो उपयोग है, कर्म आदिकमें उपयोग नही है, अतः कर्म तो कुछ अनुभव कर सकते नही, जीव अनुभव करता रहता है । जीव यदि बिगड़ा तो बिगड़ेका अनुभव करता दुःखी होता और यदि सुधरा तो सुधरेका अनुभव करता शान्त होता । तो अब केवल एकपर जिम्मेदारी आयी, जीव और पुद्गल इन दो में ही बिगाड है अन्य चारमें नही । तो पुद्गलमें उपयोग नही सो बिगड़ होकर भी कुछ बिगड़ा नही । एक बेन्च जल गई तो बेन्चका क्या बिगड़ा ? उन स्कंधोंका क्या बिगड़ा ? बिगड़ा बल्कि पुरुषका जो दुःखी हो रहा है कि मेरी बेन्च जल गयी । देखो ये पुद्गल मिट रहे हैं, जल रहे हैं, इनका तो कुछ बिगाड़ नही और यह पुरुष जो दूर बैठा है यह बिगड़ रहा है, हाय ! मेरा यह सब खतम हो गया । वस्तुके स्वरूपपर दृष्टि देकर सोचो तो संसारमें हम आप लोग जो कुछ भी परिणति बना रहे हैं वह सब असार परिणति है, सारभूत नही है । सारभूत पुरुषार्थ तो केवल एक ही यह है कि अपने स्वरूपमें अपना उपयोग बस जाय, रम जाय, इसीलिए सब ग्रन्थ हैं, इसीलिए सब तत्त्वोंका वर्णन है, तो वर्णन इस ढंगका होना चाहिए कि जिसमें सचाई भी हो, और सचाईके कारण जीवके क्लेश विकल्प आकुलतायें ये सब खतम हो जावें और यों खतम होते ही हैं । तो पदार्थ इन ६ जातियोंमें हैं और वे सब सामान्यविशेषात्मक हैं । सामान्यरहित विशेष कुछ भी पदार्थ नही होता, विशेषरहित सामान्य कुछ भी पदार्थ नही होता । इस तरह प्रमाणका विषय सामान्यविशेषात्मक पदार्थ है । यहां तक वैशेषिक सम्मत ६ प्रकारके द्रव्योंका जैसा कि उनमें स्वरूप बताया है निराकरण किया गया, अब विशेषवादमें माने गए गुणपदार्थकी मीमांसा की जायेगी ।

Version 1